मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका, मार्च २०२३, वर्ष ०७, अंक ०३

मूल्य १०/-

श्रीमान मन्दिर का मानचित्र

०१

‘मान मन्दिर’की बाल-साध्वियों द्वारा ‘मानलीला’ की अद्भुत प्रस्तुति

अनुक्रमणिका

विषय- सूची — पृष्ठ- संख्या

१ **श्रीभूमिशिलापूजन-महोत्सव**.....०५
२ रंगीली-रसीली 'होली' का जनक 'बरसाना'.....०७
३ भक्त-भूप 'श्रीरत्नावतीजी'.....१२
४ परम करुणामय 'श्रीधाम'.....१३
५ श्रीमीराबाईजी की भाव-तरंगें.....१५
६ बाबाश्री की संरचनाएँ.....१७
७ शास्त्र-संदेश 'संयम-पालन'.....२०
८ अवधारणा से असली आराधना.....२३
९ वास्तविक ब्रजाराधक 'बाबाश्री'.....२५
१०उपराम होने का उपाय.....२८
११ सृष्टि क्रम का स्वरूप ३२

|| राधे किशोरी दया करो ||

हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो | — *पूज्यश्री बाबामहाराज कृत*

संरक्षक– **श्रीराधामानबिहारीलाल**

प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान,**
गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

mob. राधाकांत शास्त्री 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922

(Website :www.maanmandir.org)

(E-mail :info@maanmandir.org)

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले |"

*** योजना ***

अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकाले व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनंत पुण्य का लाभ लें | हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ८:३० से ९:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

कैसे करुणाकातर हैं प्रभु ? भगवद्विमुख प्राणी अनन्तकाल तक यम–यातनायें भोगता है तो उसका कष्ट उनसे देखा नहीं जाता है और जीव तो उनसे मिलने की कल्पना भी नहीं करता परन्तु 'श्रीप्रभु' उसके कल्याण के लिए उसे मनुष्य–जन्म देकर पुण्यभूमि भारतवर्ष में भेजते हैं ताकि वह श्रेयस्कर व सुखद वातावरण में पहुँचकर भगवदोन्मुख हो सके, फिर भी विमुखता की ही ओर उसकी अभिमति होती है। 'भगवद्–कृपा का गुणगान' किन शब्दों में किया जाए ? भगवान् देखते हैं कि जीव की दुर्दशा समाप्त नहीं हो रही है तो वे स्वयं अवतरित होते हैं। अवतार लेकर ऐसी लीलायें करते हैं कि मनुष्य उन्हें ही गाकर भगवदोन्मुखी हो जाए। 'श्रीभगवान्' ने वे सभी लीलायें कीं, जिनमें प्राणीमात्र की रुचि उसके स्वभावानुसार हो जाए; जैसे – उन्होंने चोरीलीला किया, घर–घर माखन चुराया। हम लोग भी जन्म–जन्मान्तरों में सदा चोरी ही तो करते रहे। मनुष्य जितने भी पाप करता है, उन्हें वह सदा छुपाता है; यह चोरी ही तो है। भगवान् को 'चोर–जार–शिखामणि' कहा गया; वे चीरचोर, चितचोर, माखनचोर बने क्योंकि इनमें मन लगाकर जब कोई उन्हें गायेगा तो सहज में ही पार हो जायेगा।

आजकल 'होरी' का समय चल रहा है। ब्रज में लम्बे समय तक 'होरी का उत्सव' मनाया जाता है। कहा भी है – **"जग होरी ब्रज होरा, कैसा है यह देश निगोरा।"** बसंत पंचमी से लेकर चालीस दिन पर्यन्त ब्रज में सर्वत्र खूब रंग बरसता है। 'गुलाल' उड़ाया व लगाया जाता है और फिर बरसाना, नंदगाँव, जाव, बठैन, दाऊजी, फालैन आदि की विभिन्न प्रकार की 'होली' संसार के लिए अद्भुत आश्चर्यमयी तो होती ही है, साथ ही लोकपावनी भी। 'बरसाना में लठामार, बठैन में झामे की होली, फालेन में अग्नि के मध्य से पण्डा का निकलना, मुखराई का चरखुला–नृत्य और दाऊजी की कोड़ामार होली' जगत्–विख्यात है। किसी भी तरह मन 'भगवान्' में लगे, वही–वही लीलायें प्रभु किया करते हैं; इन लीलाओं के गान से महापुरुषों की भी बड़ी कृपा मिलती है। श्रीमानमन्दिर, बरसाना के परम विरक्त संत पद्मश्री 'श्रीरमेशबाबामहाराजजी' के 'भगवल्लीला–गुणगान' ने न केवल ब्रजभूमि तक अपितु करोड़ों श्रद्धालुओं को उनके कण्ठहार का सौभाग्य प्रदान कराया। 'होली हो या राधाष्टमी महोत्सव' इन अवसरों पर नाटिकाओं के माध्यम से 'भक्त–भगवान्' के अद्भुत चरित्रों का मानमन्दिर के 'रसमण्डप' में मंचन 'श्रीबाबामहाराज' की बड़ी दूरदर्शिता का द्योतक है क्योंकि हमारी सांस्कृतिक व आध्यात्मिक विरासत को बनाये रखने में उनका बड़ा योगदान है। इस बार 'रंगीली होली' की पूर्व रात्रि बेला में भक्त–भूप रानी 'रत्नावतीजी की नाटिका' का मंचन सुसम्पन्न हुआ।

भगवान् व भगवदीयजनों की कृपा का आस्वादन करने का सौभाग्य हमारी पत्रिका 'मानमन्दिर बरसाना' के माध्यम से सभी को सुलभ हो सके, इस भावना के साथ –

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

श्रीभूमिशिलापूजन–महोत्सव

'श्रीमानमन्दिर' ब्रह्माचल पर्वत की एक शिखर 'मानगढ़' पर विराजित है, जिसके नवीन निर्माण के लिए परम विरक्त संत श्रीरमेशबाबामहाराज के करकमलों द्वारा दिनाँक १० फरवरी २०२३ को भूमि–शिला का पूजन किया गया; इस परम दिव्य महोत्सव में मानमन्दिर की बालाराधिकाओं द्वारा एक लघु नाटिका 'श्रीमानलीला' का अति मनोहारी मंचन हुआ, जिसे देखकर सभी दर्शकजन तो भाव–विह्वल हुए ही, स्वयं श्रीबाबामहाराज भी इस मानलीला के दर्शन से परमाद्भुत प्रेमसिन्धु में निमग्न हो गए।

मानिनी श्रीराधिकारानी की प्रेम–शक्ति ने ही बाबाश्री को अखण्ड मानगढ़वास कराया है। आज से लगभग ६५ वर्ष पूर्व जब श्रीबाबा इस एकान्तिक निर्जन स्थल (प्राचीन जीर्ण–शीर्ण मानमन्दिर) में रहते थे तो कई–कई घंटों तक मानशिला (जो मन्दिर के बगल में नीचे गुफा में है) के पास बैठे हुए समाधि–सी लगी रहती थी। बाबाश्री के गूढ़तम सुगुप्त भावों को केवल श्रीकृपा से ही कुछ अंश में अनुभव किया जा सकता है ।

श्रीराधारानी की अन्तरंग प्रेमलीलास्थली 'श्रीगह्वरवन धाम' के सुदुर्लभ रस का प्रचार–प्रसार करने के लिए ही पूज्यश्री का इस धराधाम (श्रीब्रजधाम) में पदार्पण हुआ है। श्रीब्रजरस का सूर्य नवीन सुनिर्मित 'श्रीमानमन्दिर' अपनी परम निष्काम विशुद्ध भावमय श्रीराधारस की किरणों से सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करेगा ...। परम दिव्य प्रेममयी 'श्रीमानलीलास्थली' होने के कारण ही इस पर्वत–शिखर 'मानगढ़' पर स्थित मानभवन (मानमंदिर) में श्रीराधामानविहारीलाल सुशोभित हो रहे हैं। मानगढ़ में रूठी हुई राधारानी को श्यामसुन्दर ने मनाया था, जिससे इस स्थल विशेष का नाम 'मानगढ़' हुआ है। 'मान' माने रूठना। श्रीकृष्ण ने मनाने के बहुत से उपाय किये। कभी उनके चरणों में मस्तक रखते हैं, कभी उनको पंखा करते हैं, कभी दर्पण दिखाते हैं और कभी विनती करते हैं, पर जब राधारानी नहीं मानती हैं, तब श्यामसुन्दर सखियों का सहारा लेते हैं। ये मान किसी लड़ाई या क्रोध से नहीं होता है, ये मान एक प्रेम की लीला है। राधारानी श्यामसुन्दर के सुख हेतु मान करती हैं । मानमन्दिर में 'श्रीमानबिहारीलालजी' के दिव्य दर्शन हैं।

श्रीमानमन्दिर का प्रणाम मन्त्र –

देवगन्धर्वरम्याय श्रीराधामानविधायिने ।
श्रीमानमन्दिर संज्ञाय नमस्ते रत्नभूमये ॥

(श्रीब्रजभक्तिविलास)

अर्थात् – "देव–गन्धर्वों से रमणीक, इस दिव्य रत्नमय धरा पर मानिनी ने मान किया, अतः यह स्थान "श्रीमानमंदिर" नाम से प्रख्यात हुआ, इसे प्रणाम है।

नित्य विहार में "संभ्रममान" रसिकों ने माना है, जो दीर्घ मान नहीं होता है – **मानगढ़ चढत सखी कत आजु ।**
'व्यास' बचन सुनि कुँवरि निवाज्यो श्याम लयौ सिर ताजु ॥
(श्रीव्यासवाणी –१६४) श्रीप्रियाजी, श्रीकृष्ण के वक्षस्थल में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर 'मान' करती हैं जो एक 'मान का कारण' बन जाता है। श्रीजी की 'मानलीला' करने के कई कारण होते हैं – कभी स्वयं श्रीजी 'श्यामसुंदर' को संगीत (नृत्य–गान–वाद्य) सिखाती हैं, जब श्रीठाकुरजी (लीला दृष्टि से) ठीक तरह से नहीं सीख पाते हैं तो श्रीजी मान कर लेती हैं, फिर ठाकुरजी मनाते हैं। **"पिय के हिय तैं तू न टरति री"** यदि कुछ अधिक समय तक मान रहता है तो 'मानगढ़ में मान' कई प्रकार से टूटता है –

(१) श्रीकृष्ण स्वयं विनय एवं सेवा से मना लेते हैं –
सब निसि ढ़ोवा करति किसोरहि भोर मानगढ़ टूटयौ ॥
'व्यास' स्वामिनी मिली बाँह दै पुनि लचि लालन लूटयौ ॥
(श्रीव्यासवाणी –१५६) पुनः
"भूलैं भूलैं हूँ मान न करि री प्यारी" (केलिमाल –१०)

(२) छद्म से वीणावादिनी आदि के रूप में प्रियाजी को प्रसन्न करके छद्म खोलना – (श्रृंगाररससागर में श्रीमैन प्रभुजीमहाराज द्वारा वर्णित) 'विदग्ध माधव' में निकुञ्ज विद्या का छद्म एवं 'सैमरी' में श्यामली सखी का छद्म

तथा 'किन्नरी' का छद्म, जिसमें रत्नमाला पुरस्कार के स्थान पर 'मान रत्न' माँगकर भंग कराना।

(३) छद्म से सखी रूप बनाकर समझाते हैं –

अजहूँ माई टेव न मिटति मान की।
जानति पिय की पीर न मानति सोंह बाबा वृषभानु की।

(श्रीव्यासवाणी – १४२)

(४) अन्य सखियों की सहायता से –

आवत जात हौं हार परी री।
ज्यों–ज्यों प्यारो विनती कर पठवत त्यों त्यों तू गढ़ मान चढ़ी री।
तिहारे बीच परे सोई बाबरी हौं चौगान की गेंद भई रीं।
'गोविन्द' प्रभु को वेग मिल भामिनी सुभग यामिनी जात बही री।

यह श्रीगोविन्दस्वामीजी का पद है, इसमें ऐसा लिखा है कि राधारानी का मान शिखर के नीचे से शुरू हुआ और जैसे–जैसे श्यामसुन्दर ने मनाया वैसे–वैसे श्रीजी ऊपर चढ़ती आयीं। जब श्रीजी ऊपर चढ़ आयीं तो श्यामसुन्दर ने सखियों का सहारा लिया, उन्होंने विशाखाजी व ललिताजी से कहा कि जाओ राधारानी को मनाओ, हमारी तो सामर्थ्य नहीं है, हम तो थक गये, श्रीललिताजी व अन्य सखियाँ जब यहाँ आती हैं और श्रीजी से कहती हैं कि आप अपना मान तोड़ दो तो श्रीजी मना कर देती हैं। 'सखी' ठाकुरजी के पास नीचे जाती हैं तो ठाकुरजी फिर ऊपर भेज देते हैं फिर नीचे जाती हैं तो फिर ऊपर भेज देते हैं तो आखिर में सखी बोली कि हे राधे ! इस गिरि पर मैं कई बार चढ़ी और कई बार उतरी, मैं तो थक गई। आपका मान तो टूटता ही नहीं। मैं और कहाँ तक दौड़ूँ ? इधर से आप भगा देती हो और उधर से वो बार–बार प्रार्थना करते हैं कि जाओ–जाओ। सखी कहती है कि हे राधे ! मैं चौगान की गेंद की तरह से भटक रही हूँ। (क्रिकेट में तो एक आदमी गेंद को मारता है, पर चौगान में हर कोई गेंद को मारता है) वैसे ही आप दोनों मुझे मार रहे हैं। हे राधे ! आप जल्दी से श्यामसुन्दर से मिलो, ये रात बीती जा रही है। श्रीजी कहती हैं – **दौरी–दौरी आवत मोहि को मनावत हों कहा दामन मोल लई री। अँचरा पसार के मोहि कूँ खिजावत हों कहा तेरे बाबा की चेरी भई री। जा री जा सखी भवन अपने सौ बातन की एक कही री। 'नंददास' प्रभु वे ही क्यों न आवत उनके पाँयन कहा मेंहदी दई री॥**

इसके उपरान्त श्रीजी का मान टूटता है और श्रीयुगलसरकार (प्रिया–प्रियतम) का परस्पर मिलन होता है।

श्रीमानमन्दिर–महिमान्वित रसिया

श्रीबाबा ने कियौ संकल्प, श्री मन्दिर मान चमकैगो॥
बाबाश्री जब ब्रज में आये कियौ है गहवर ठौर,
बहुत भयानक जगह थी यह, बसते डाकू चौर,
कोई न आवैगो... श्रीबाबा ने कियौ संकल्प..... ।
देखी यहाँ की गाँमन स्थिति कीर्तन कौ कर्‌यौ जोर,
नाचैं गावैं ढोल बजावैं, घंटा की घनघोर,
ब्रज रस बरसैगो ... श्रीबाबा ने कियौ संकल्प..... ।
धनी सेठ को मान ठुकरायो रहै अनन्य कर जोर,
ब्रजरस कण–कण राधा धन है, रहैं श्रीभाव विभोर,
रीझि जो पावैगो ... श्रीबाबा ने कियौ संकल्प..... ।
ब्रज रस ऐसौ फैल्यौ ब्रज में गाँव–गाँव भयौ शोर,
ब्रज–वन–पर्वत–कुण्ड–गौ–वर्द्धन, भई लीला बेजोर,
धामी–धाम प्रगटैगो... श्रीबाबा ने कियौ संकल्प.....।
अब तो तीन–तीन मन्दिर जग चमकेंगे अति जोर,
विशुद्ध भक्ति आराधन से सब, करें हैं प्रेम–विभोर,
दिव्य भाव आवैगो ... श्रीबाबा ने कियौ संकल्प.....॥

मन्दिर शिखर मानगढ़ ऊपर राधामानविहारीलाल।
श्री महिमा जिनकी है निराली, रहै सदा रसमय हरियाली,
यह जानैं सहचरियाँ लाली,
श्रीचरणन की कृपा से जानै मूरख सबरौ हाल। मन्दिर शिखर ...
ऐसौ रसमय रास प्रकट कर्‌यौ, श्रीआराधन अद्‌भुत अनुपम भयौ,
श्री गहवर कौ स्वरूप प्रकट भयौ,
श्रीआराधिकाएँ नाचैं–गावैं मन में गिरधर लाल। मन्दिर शिखर ...
दिव्य भाव जग ने जान्यौ है, रसिकन मन आनन्द बढ़्‌यौ है,
ब्रज रस सम्मुख सबन भयौ है,
ये रस लेवै को भजौ सब छोड़ कपट जंजाल। मन्दिर शिखर ...
विशुद्ध भक्ति जानी है सबने, सेवाराधन जान्यौ जन–जन ने,
दुर्लभ सहज कर्‌यौ रसिकन ने,
श्रीगहवर में वास करै जो होवै मालामाल। मन्दिर शिखर ...
मानमन्दिर है स्रोत या रस कौ, आश्रय से जानै या रस कौ,
यहाँ कौ वास कठिन है सबकौ,
सच्ची शरणागति होवै तब होय जाय शुभ काल। मन्दिर शिखर ...

रंगीली–रसीली 'होली' का जनक 'बरसाना'

(सम्पूर्ण विश्व में भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ साक्षात् श्रीभगवान् का अवतार होता है। भारत (भा– ज्ञान–भक्ति का प्रकाश, रत – डूबा रहता) अर्थात् जो निरन्तर ज्ञान–भक्ति के प्रकाश में रत 'डूबा रहता' है, उसे 'भारत' कहते हैं; इसीलिये भगवान् यहाँ आते हैं। जब पृथ्वी माँ (भारत माता) गाय का रूप धारण कर प्रभु से प्रार्थना करती है तो भगवान् अवतार लेते हैं। इसलिए विश्व के कल्याण के लिए बरसाने में सबसे सुन्दर–श्रेष्ठ, सबसे बड़ी गौशाला (श्रीमाताजी गौशाला) चल रही है; इस गौशाला से सम्पूर्ण संसार का कल्याण हो रहा है, विनाश होने से बचा रही है ये गौशाला; सारा विश्व बचा है केवल भारतवर्ष के कारण और भारत में भी 'बरसाना धाम' जहाँ लगभग ६५ हजार से अधिक गौवंश है; इन गायों के पालन–पोषण के लिए कभी किसी से कुछ भी नहीं माँगा जाता है। अब यहाँ (श्रीमानमन्दिर, गह्वरवन) से विश्व के कल्याण के लिए अनेक गौशालायें (पंजाब, मध्यप्रदेश, अयोध्या, प्रयाग, काशी इत्यादि तीर्थस्थलों में) खोली जाएँगीं, जिससे गौवंश बढ़कर लगभग १२ लाख हो जाएगा। श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान में पूर्णतः निष्काम भाव से चल रही गौसेवा, अतिथि सेवा इत्यादि के विस्तार में श्रीयमुनामाताजी (पं. रामजीलालशास्त्रीजी, रसमंदिर वालों की माँ) का परम पुण्यमय विशेष योगदान व श्रेय है।)

होली का महोत्सव सम्पूर्ण भारतवर्ष में होता है, लेकिन इस परम पावनकारी पर्व का प्रारम्भ 'बरसाने' से होता है। ब्रज में भी सभी गाँवों में होली होती है; बरसाने में नवमी तिथि की 'रंगीली होरी' के बाद ही सब जगह शुरूँ होती है – दशमी को नंदगाँव में होती है, फिर एकादशी से पूर्णिमा तक वृन्दावन में होती है, उसके बाद द्वितीया को 'दाऊजी का होरंगा' होता है, उसी दिन राल–भदाल में व जतीपुरा में (गुलाल कुण्ड पर) भी होती है, तृतीया को आन्यौर में होती है, मुखराई में चरखुला नृत्य होता है। द्वितीया–तृतीया को बठैन–जाव में भी होती है, पंचमी को खायरे में होती है। इस तरह से सारे ब्रज में अलग–अलग तिथियों में होली का उत्सव होता रहता है। लेकिन नवमी से पहले कहीं नहीं होती है, सब होलियों का मूल 'बरसाना' है। ब्रज में अनेक तरह की होलियाँ होती हैं जो संसार में कहीं नहीं हैं। इससे पता चलता है कि सारे संसार में होली का प्रचलन 'ब्रज' से ही हुआ है और उसमें भी सभी होलियों का जनक 'बरसाना' है, जहाँ श्रीजी के द्वारा ही सभी विधाएँ प्रकट हुई हैं। 'बरसाना' में रंगीली होरी ५००० वर्ष से भी अधिक पुरानी है और इसका प्रमाण 'गर्गसंहिता' में है। ब्रज में नौ उपनन्द थे, जो सभी गुणों से युक्त व धनवान–शीलवान थे; इनके घर में देवों के वरदान से गोप–कन्यायें उत्पन्न हुई, वे सभी राधारानी की सखियाँ अनुचरी थीं। एक समय बसंत ऋतु आयी, सभी ने होरी का उत्सव प्रारम्भ करना चाहा परन्तु होरी–उत्सव प्रारम्भ कैसे हो, श्रीजी तो 'मानलीला' में हैं। सब सखियाँ श्रीजी के पास जाती हैं और कहती हैं कि हे राधारानी ! हे चन्द्रबदने !! हे मधुमान करने वाली मानिनी !!! हमारी बात सुनो, यह होरी का उत्सव है, इस उत्सव को मनाने के लिये तुम्हारे कुल में ब्रज के भूषण नीलमणि नन्दलाल आये हुए हैं। श्यामसुन्दर की ऐसी शोभा है –**'श्रीयौवनोन्मद विघूर्णित .... स्वपदारूणेन'**

(श्रीगर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड –१२/८)

"हे राधे ! यौवन की शोभा से ब्रजराज के नेत्र मद से झूम रहे हैं। घुँघराली, काली–काली लटूरियाँ उनके गोल–गोल कपोलों पर लटक रहीं हैं और उनकी लटूरियों की, उनके केशों की जो छटा है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। पीला जामा बड़ा घेरदार है और पाँवों में नूपुर छम–छम बज रहे हैं, बरसाने की

ओर चले आ रहे हैं। यशोदाजी के द्वारा धारण कराया गया मुकुट सूर्य की तरह प्रकाशमान हो रहा है। कुण्डल ऐसे चमक रहे हैं जैसे बिजली चमक रही हो। उनके गले में बनमाला ऐसी लगती है जैसे बादल बिजली के साथ आ गए हों, उनका सारा शरीर लाल रंग से रँगा हुआ है और उनके हाथ में पिचकारी है। हे राधे ! वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" इस होरी को नन्ददासजी ने इस तरह से गाया है। राधारानी से सखियाँ कहती हैं कि हे राधे ! आज के दिन आप मान क्यों करती हैं ? मान छोड़कर चलिये होरी के मैदान में –

"अरी चल नवल किशोरी गोरी भोरी होरी खेलन जाँहि।" (श्रृंगाररससागर)

कैसी सुन्दर चाँदनी रात है ! ऐसे में आपको कैसे घर में बैठना अच्छा लगता है ? हे राधे ! वहाँ हर गाँव के गोपी–ग्वालों के टोल जुड़ रहे हैं।

उधर श्यामसुन्दर आये और उन्होंने देखा कि कोटि–कोटि गोपियाँ हैं किन्तु उनकी आँखें जिसे ढूँढ़ रही थीं, वे राधारानी वहाँ नहीं हैं। श्यामसुन्दर ने चारों ओर देखा पर श्रीजी नहीं थीं, नेत्र नीचे करके उदास हो गये। करोड़ों गोपियाँ हैं पर **राधारानी** नहीं हैं।

श्यामसुन्दर ने विशाखाजी को आँखों से पूछा कि 'श्रीजी' कहाँ हैं ? विशाखा ने कहा – "श्रीजी नहीं आई", संकेत कर दिया कि अभी जाओ, तो विशाखाजी जाकर श्रीजी से बोलीं – "अब आप देर मत करो। बरसाने में श्यामसुन्दर बन–ठन के आये हैं, अब तुम चलो।" श्रीजी मुस्करा गयीं तो विशाखाजी समझ गयीं कि लाड़लीजी मान गयी हैं। विशाखाजी ने बाँह पकड़ कर उठा लिया कि अब चलो और श्रीजी का श्रृंगार किया। श्रीजी जब चलीं तो ऐसे चल रही हैं कि कमर में लचक आ रही है। उनका रूप ऐसे लगता है जैसे कि चमकती हुई ज्योति...जैसे हवा में दीपक की ज्योति छनछनाती है ... चलते समय एक लट 'श्रीजी' के गालों पे लटक आयी है और वो लट–लटक कर गालों में जो नासिका का मोती है, उस मोती में उलझ गयी। नन्ददासजी कहते हैं कि जैसे कोई मछली फाँसने वाला पानी में काँटा डालता है तो काँटे के नीचे आटे की गोली लगा देता है और मछली उसमें फँस जाती है। वैसे ही श्रीजी की एक घुँघराली लट जो लटकी, वह तो काँटा थी, लट मोती में उलझ गयी तो मोती आटे का चारा थी और मछली फँस गयी ... मछली क्या थी ? श्यामसुन्दर का मन। चारों ओर सखियाँ और बीच में श्रीजी जा रही हैं तो ऐसा लगता है कि चारों ओर कुमुदनियाँ खिल रहीं हैं, एक चाँद जा रहा है, ये गौर चाँद 'राधारानी' हैं जो आज पैदल जा रहा है। वहाँ पर अब खेल शुरू हुआ, पहले तो गुलाल से खेल हुआ। गुलाल के खेल के बीच में से श्यामसुन्दर ने श्रीजी को धोखे से पिचकारी मार दी तो श्रीजी ने मान कर लिया कि गुलाल से खेल हो रहा था, तुम जब हारने लगे तो बेइमानी क्यों की ? हुआ ये कि श्रीजी ने मान कर लिया और खेल रुक गया। यह तो बड़ा गड़बड़ हो गया, सारा रस ही चला गया। ललिताजी के पास मुकद्दमा गया कि इसका फैसला क्या होगा ? तो ललिताजी ने कहा कि आप जो चाहो वह दण्ड इनको दे दो, इन्होंने बेइमानी तो की ही है। बोलीं कि क्या दण्ड दिया जाये ? अब क्या दण्ड हुआ, ये भी सुनिए।

गुलाल का खेल तो बहुत हुआ। गुलाल के खेल में जब श्यामसुन्दर हारने लग गये तो उन्होंने सबकी दृष्टि बचाकर बेइमानी की और श्रीजी को पिचकारी मार दी। श्रीजी बहुत चतुर हैं, वे जानती हैं कि अगर ये हारेंगे तो कोई न कोई बेइमानी जरूर करेंगे तो जैसे ही उन्होंने पिचकारी मारी, श्रीजी ने बड़ी चतुरता से मुड़कर उस धार को बाँये हाथ से रोक दिया। मारी तो थी श्यामसुन्दर ने कि सारा ऊपर से नीचे तक तर–बतर कर देंगे पर श्रीजी भी बड़ी खिलाड़ हैं। सारी धारा को अपने हाथ से रोक दिया पर फिर भी कुछ छींटे उनके गौर कपोलों पर आकर लग गये तो वह इतना अच्छा लग रहा था कि आप लोगों को हम क्या उपमा दें ? जैसे अमरूद पर लाल–लाल छीटें जब पड़ जाते हैं तो बहुत अच्छे लगते हैं। वह इतनी अच्छी लगीं कि श्यामसुन्दर का होरी का खेल रुक गया और श्रीजी के पास आकर

वे उन छींटों को देखने लग गये। ऐसी शोभा हुई उनकी कि खेल ही रुक गया। श्यामसुन्दर समझ गये कि श्रीजी जरूर मान में हैं। बोले कि चलो फिर से खेलें। जब श्यामसुन्दर विनती करते हैं तो श्रीजी बोलीं कि जाओ, तुम बेइमान हो। सब सखियाँ इकट्ठी हो गयीं और मुकद्दमा पुनः ललिताजी के पास गया। ललिताजी ने कहा कि इन्हें हम यह दण्ड देती हैं कि इनकी आँखों में काजल लगा दिया जाय। होरी में यह बहुत बड़ा दण्ड है। होरी का काजल ऐसे नहीं होता। होरी का काजल गाढ़ा पोता जाता है। सखियाँ बोलीं – "मंजूर है दोनों को ?" यह बदला रस भरा है। श्रीजी ने दोनों हाथों की उँगलियों में काजल लिया। एक उँगली से नहीं, दोनों उँगली से काजल लिया। एक हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया कि कोई गड़बड़ न करें और दूसरे हाथ से काजल ले, उनके नेत्रों को देख रही हैं। वे भी देख रहे हैं कि जल्दी से काजल लगाएँ। जैसे ही वह काजल का हाथ लेकर जाती हैं तो वह गाल हटा देते हैं। झगड़ा बढ़ा, खींचातानी में श्रीजी ने अपनी बाँयी भुजा से उनको ऐसे कस लिया कि उनकी गर्दन हिल नहीं पायी और काजल लगा दिया। यह लीला उसी दिन बरसाने में हुई। उसी के अंत में लिखते हैं कि श्रीकृष्ण को श्रीराधारानी के हाथों से जब काजल लग गया तो अपना पटका राधारानी को भेंट करके अपने घर चले गये। जो हार जाता है, वह पटका भेंट करता है। यह होरी–लीला 'गर्गसंहिता' में वर्णित है। ये होरी–उत्सव की परम्परा आज तक बरसाने में चलती आ रही है, जो बरसाने में पाण्डे–लीला से प्रारम्भ होती है।

श्रीयुगलरसराज की होरी–लीला

मानसरोवर पर श्रीकृष्ण सखी रूप में राधाराधना करते हैं। यह लीला श्रीराधासुधानिधि में भी आई है –

कालिन्दीतटकुंजमन्दिरगतो
योगीन्द्रवद्यत्पदज्योतिर्ध्यानपरः
सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः ।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहितः
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा ॥

(श्रीराधासुधानिधि – ९५)

यमुनाजी के किनारे मानसरोवर की कुंज में श्रीकृष्ण योगियों की भाँति बैठे हुए हैं एवं श्रीजी का ध्यान कर रहे हैं। मुख से राधा ...राधा ...राधा नामोच्चारण और नेत्रों से अविरल प्रेमाश्रु बह रहे हैं। उस प्रेमाकर्षण के अद्भुतरस से सम्मोहित होकर गौरांगी राधा अनायास श्रीकृष्ण के समीप चली आती हैं। संसार में जितने भी मन्त्र हैं, उन सबमें 'राधा' नाम सर्वश्रेष्ठ है, जिसे परमविद्या कहा गया है। सर्वप्रथम 'राधा' नाम का सतत् जाप करने वाली आराधिका का दर्शन ललिताजी को होता है।

नंदगाँव, बरसाने के मध्य समाज–गायन में यहाँ की होरी–लीला का वर्णन आता है। यहाँ की यह बड़ी विलक्षण होरी लीला है। एकादशी पर मानसरोवर में श्रीराधावल्लभजी का गोस्वामी–समाज जाकर 'समाज–गायन' में यह पद गाता है –

श्री ललित निकुंज बिहारी खेलत कुंज में ।
पिय कियैं सखी कौ रूप सखिनि के पुंज में ।

(रासाचार्य श्रीहितघनश्यामजी की वाणी में मानसर की होरी लीला)

लालजी ने छापेदार लँहगा पहनकर सम्पूर्ण श्रृंगार 'सुमन' से किया है। ललिताजी ने जब इस नई गोपवनिता को देखा, दौड़ते हुए श्रीजी के पास पहुँची और बोलीं –

"वहि बारम्बार रटै रट राधा मंत्र कौं"

"हे राधे ! एक नवेली ध्यानस्थ बैठकर आपके नाम को सप्रेम उच्चारण कर रही है।" राधारानी ने पूछा – "कहाँ है वह ?" ललिताजी बोलीं –**मानसरोवर माँझ**

अरी सुनि न्हाइ कैं ।
राधा कौ जाप जपै पानी में जाई कैं ।

"हे राधे ! मानसर में स्नान करके वहीं आपका नाम जप कर रही है।

तेरी मूरति सोने की अन्हवाइ कें ।
ताकौ चरनोदक लै ध्यान लगाई कें ॥

उसने आपकी स्वर्णिम प्रतिमा बना रखी है, उसे स्नान कराके बड़े भाव से उसका पादोदक लेती है। नाना प्रकार से वह आपकी प्रतिमा की पूजा करती है।

अमृतवत् सुस्वादु व्यंजनों का भोग लगाती है। भोग लगाने के बाद ही स्वयं प्रसाद ग्रहण करती है।

"तेरी प्रतिमा पहिरे कंठी में पोहि कें"

आपकी छोटी–सी प्रतिमा उसने कंठी में पहन रखी है, जो सदा उसके वक्ष का स्पर्श पाती है।

"वंशीधर की सी नांई बंशी बजाबई"

और तो और वह हमारे कन्हैया जैसी वंशी भी बजाती है, उसकी वंशी के मधुरस्यंदी स्वर से अचर–सचर के गुणों में विरोधाभास हो जाता है।"

"धैनु चरें न चलें न करें त्रिनु खंडली"

वेणुगीत में भी कहा गया है –

शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थु। गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥

(श्रीभागवतजी १०/२१/१३)

वंशी के उन्मादक नाद को सुनकर बछड़े घास चरना भूल जाते हैं, मुख में जो दूध है उसे न उगल ही पाते हैं, न निगल ही पाते हैं। जड़ स्थिति को प्राप्त हो गए हैं।

श्रीजी ने पूछा – "ललिते ! उसकी अवस्था क्या है?" तो ललिता ने कहा –

वैस किशोर उन्हारि श्री नंदकिशोर की। अँखियाँ बडडी सुख दैनी पैंनी कोर की॥

"बड़े–बड़े कमल सदृश चपल लोचन हैं, जिन्हें देखकर प्रतीत होता है मानो खंजन पक्षी नृत्य कर रहे हैं।

हे लाड़ली जू ! यदि आप नेत्रसुख चाहती हो तो एक बार उसे निहार लो।"

जो सुख चाहौ नेंननि तौ सुख दीजिये। चलि प्रेम पियूष मयूष पिवौ पी जीजिये॥

यह सुनकर श्रीजी का कोमल गात्र पुलकायमान हो गया।

बात सुने रोमांच किशोरी के भयो। वृषभानु लली ललिताहि हार हिय कौ दयौ॥

प्रसन्नवदना श्रीजी ने अपने गले का हार उतार ललिताजी को दे दिया। **प्रेम चले भरि नैंन मेंन रस में सनें। टपके असुवा मनु कंजनि ने मोती जनें॥**

नेत्रों से अविराम प्रेमाश्रुपात होने लगा। वे प्रेमाश्रुबिंदु जब उन्नत वक्षोज पर गिरे तो ऐसा लगने लगा मानो कमल 'मोती' पैदा कर रहा है। श्रीजी के नेत्र तो कमल हैं एवं अश्रुबिन्दु मोती हैं।

"सखी अंश भुजा गति हंस चली गज गामिनी"

गजगामिनी श्रीजी राधाराधिका के दर्शन मिलन को चलीं। मानसरोवर तट पर आकर उस आराधिका के साथ श्रीजी ने होरी–क्रीड़ा आरम्भ कर दी।

"वाल तमालनि बीच गुलाल उड़ावहीं"

नील–पीत–हरित–अरुण विविध रंगों के अबीर से सम्पूर्ण गगन रंजित हो गया।

"चाहति बाल तमाल लतानि उठाइ कें"

तमाल जो कि दोनों का निरावरण मिलन नहीं होने दे रहा था, श्रीजी ने उसे पकड़कर हटा दिया, फिर तो दोनों का ऐसा मिलन हुआ।

"मनु हेम लता लपटी नव साँवल कंज सों"

मानो कोई स्वर्णलता नीलकमल से लिपट गई हो; श्रीजी उसके स्वरूप को देखकर चकित–थकित थी, उन्होंने पूछा – **कौन तिहारौ नाम कहाँ तेरो गाँव री। तें मेरौ मन मोह्यौ री सखी साँवरी॥**

"अरी सखि ! तेरा नाम क्या है? तेरी धन्य जन्म धरा कौन–सी है ? तेरे रूप ने मुझे यन्त्रित कर लिया है।" तब वह बोली –

स्यामा मेरौ नाम गाँव जहाँ नन्द कौ। सखि मेरें तेरौ ध्यान चकोर ज्यों चंद कौ॥

"अरी सखि ! मेरा नाम श्यामा है और गाँव तो वही है, जहाँ के नंदबाबा हैं अर्थात् नंदगाँव की हूँ मैं किन्तु चन्द–चकोर की तरह मेरा तुमसे विशेष प्रेम है।"

ब्रज की होलियाँ

बरसाने–नंदगाँव की लट्ठमार होली

श्रीबरसाने में नवमी को लट्ठमार होरी होती है, जिसमें बरसाने की गोपियाँ, नन्दगाँव के ग्वालों पर लट्ठ से प्रहार करती हैं और वे रोकते हैं। रसिकों ने श्रीकृष्ण की गौरवपूर्ण हार का वर्णन करके बड़े शान के साथ उनके भागने का भी वर्णन किया है। यहाँ लट्ठमार में बाँस या लट्ठ की परम्परा क्यों रखी गयी है? इसके कई कारण हैं। जैसे – नायक की

अधिक चपलता को रोकने के लिए लकुट ही काम आती है और गोपीजनों के लट्ठ प्रहार को ग्वाल ढालों के द्वारा बचाते हैं, रसमय हास–परिहास करते हुए। इस प्रसंग में नायक की हार ही रस वृद्धि का कारण होती है। यह भी लट्ठ का एक मुख्य कारण है। श्रीकृष्ण, श्रीजी के लिये हार बनाकर ले जाते हैं। हार के बदले वे पराजय का हार देकर इनका रस गौरव बढ़ाती हैं। बरसाने का पांड़े होली का बुलावा लेकर जाता है। उत्तर में नन्दगाँव का पांड़े फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को बरसाने सूचना लेकर आता है। नवमी को समधिन यशोदा समध्याने में आती हैं। साथ में श्रीकृष्ण भी अपनी माँ का गालियों से सम्मान सुनते हैं और मुस्कुराते हैं। यह गाली व परम्परा प्रतिवर्ष चल रही है, यहाँ दोनों गाँवों में सम्बन्ध शाश्वत बना हुआ है। राधा के बाद, आज तक कोई भी बरसाने की बेटी नन्दगाँव में ब्याही नहीं जा रही है। आज भी लाखों–लाखों लोग रंगीली होरी की परम्परा को प्रत्यक्ष देखते हैं। यद्यपि होरियाँ ब्रज में सर्वत्र मनायी जाती हैं किन्तु ऐसी सम्बन्धात्मिकता की परम्परा विश्व में कहीं नहीं है, इसलिए बरसाने की होरी अनेक लक्ष श्रद्धालु दर्शकों की आस्वाद भूमि बनती है। आज भी प्रति वर्ष भाद्रशुक्ल त्रयोदशी में, नन्दगाँव के ग्वाल–बाल, साँकरीखोर में आकर मटकी फोड़ना, यह लीला परम्परा का निर्वाह करते हैं। उस दिन नन्दगाँव यहाँ उमड़ पड़ता है और उनका ससुराल की भाँति यहाँ चित्राजी के गाँव (चिकसोली, राधा रस मन्दिर) में स्वागत होता है। उससे दो दिन पूर्व एकादशी को कृष्ण व उनके सखाओं की, गोपियाँ साँकरीखोर में चोटी बाँध देती हैं। उस दिन नन्दगाँव का कोई भी नहीं आता है क्योंकि ससुराल में मान हानि नन्दगाँव वालों को अच्छी नहीं लगती है।

बठैन का होरंगा

ब्रज की प्राचीन होलियों में बठैन का होरंगा प्रसिद्ध है, जो जाव और बठैन के गोप–गोपियों में परस्पर खेला जाता है। दाऊजी मंदिर में समाज करके ढोल, ढप, नगाड़ों की गड़गड़ाहट के मध्य एक अलौकिक ही दृश्य होता है। होली के पश्चात् तृतीया के दिन जाव के हुरियारे बठैन में जाते हैं और बठैन की गोपियाँ लाठियों से उन्हें मारती हैं; वे बबूल के झामे से (काँटों के डंडों से) अपना बचाव करते हैं। हुरंगा की जय–पराजय का केन्द्र एक ध्वजा होती है, जहाँ तक पहुँचने के लिए बठैन की गोपियाँ लाठी–डंडो से प्रहार करती हैं ताकि काँटों की बनाई दीवार तोड़कर लक्ष्य तक पहुँचा जा सके।

फालेन की चमत्कारिक होली

फालेन ग्राम में ठाकुरजी ने ब्रजवासियों को प्रह्लाद– लीला दिखाई, जिसकी अनुकरण लीला आज तक चल रही है। यहाँ आज भी प्रह्लाद–मन्दिर का पुजारी (पंडा) एक महीने तक प्रह्लाद मन्त्र का जाप व उपवास करता है और मासान्त पर पूर्णिमा की रात्रि को मन्दिर से निकल कर प्रह्लाद–कुण्ड में स्नान कर, शीतला लग्न में लगभग चार बजे जहाँ १० फुट ऊँची होलिका बनाई जाती है और अग्नि प्रज्वलित की जाती है और सबके देखते ही देखते पंडा धधकती हुई आग से निकल कर पुनः प्रह्लाद–मन्दिर में चला जाता है। प्रह्लाद–मन्त्र के प्रभाव से आग उसे जला नहीं पाती। इस लीला को देखने के लिए देश–विदेश से हजारों लोग आते हैं।

दाऊजी का होरंगा

बरसाने की रंगीली होरी – दाऊ जी के हुरंगा का इतिहास, राम–श्याम के विवाहोत्सव के रूप में राधारमण, रेवतीरमण राम–श्याम का विवाहोत्सव ही बरसाने में होरी व दाऊ जी में हुरंगा के रूप में मनाया जाता है –

पल्ले पर गई रंग में रंग दई होरी खेलत रसिया।
लंहगा सबरो रंग में कर दियो रंग दइ अंगिया।
रंग–बिरंगी कर के छोड़ी रंग दइ फरिया॥
डफ लै होरी गावन लाग्यो दै–दै हँसिया।
हाँसी सुन रिस लागै बदलो लूँगी मन बसिया॥
रसिया की धोती पकड़ी मैंने मूठन के कसिया।
धोती फाड़ बनयो कोड़ा पीटयो मन भरिया॥
पिट–पिट के हू फाग सुनावै दाऊ को भैया।
ऐसो भयो होरंगो ब्रज में गावै दुनिया॥

राल की होली

इस रालवन का नाम राल इसलिए है क्योंकि यहाँ होरी होती है। ब्रज में अलग–अलग ढंग की होरियाँ होती हैं। बरसाने–नन्दगाँव की विश्व प्रसिद्ध लठामार होरी, दाऊ जी का हुरंगा जिसमें कोड़ामार होरी होती है, जाव–बठैन में बबूल के झामों से प्रेम भरी पिटाई होती है, मुखराई का चरखुला नृत्य, फालेन में पूर्णिमा के दिन पण्डा धधकती आग में होकर निकलता है और यहाँ (राल) में झंडी की होली होती है। ध्वज कौन जीतता है, कौन हारता है, इस बात की रार होती है। इसलिए भी इसे राल कहते हैं।

भक्त–भूप 'श्रीरत्नावतीजी'

बाबाश्री द्वारा कथित श्रीभक्तमाल–कथा (१९/१०/२०१०) से संकलित

पृथ्वीराज नृप कुलवधू भक्त भूप रत्नावती ।।
कथा–कीर्तन प्रीति भीर भक्तनि की भावै ।
महा महोत्सव मुदित नित्य नन्दलाल लड़ावै ।।
मुकुन्द चरण चिन्तवन भक्ति महिमा ध्वजधारी ।
पति पर लोभ न कियौ टेक अपनी नहिं टारी ।।
भलपन सबै विशेष ही आमेर सदन सुनखाजिती ।
पृथ्वीराज नृप कुलवधू भक्त भूप रत्नावती ।।

(श्रीभक्तमालकार नाभाजीमहाराज कृत छप्पय – १४२)

श्रीनाभाजीमहाराज ने भक्तमालजी में रानी रत्नावतीजी को 'भक्त–भूप' कहा है। जो 'भक्तों की सेवा व भगवान् की सेवा' दोनों को आराध्यदेव मानकर चलते हैं, वे 'भक्त–भूप' बोले जाते हैं। केवल भगवान् की सेवा करने वाले 'भक्त–भूप' नहीं होते हैं। स्वयं श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा है कि हमारे 'भक्त की पूजा' हमसे बड़ी है – **'मद्भक्तपूजाभ्यधिका'** (श्रीभागवतजी ११/१९/२१) जिसके अन्दर बहुत बड़ा वात्सल्य व बहुत बड़ी सहनशीलता होती है, वह 'भक्त–भूप' बन जाता है। अनेक भक्तों के अनेक स्वभाव होते हैं, उन स्वभावों की विषमता को देखकर न खीजे, उनसे निभा ले; वे 'भक्त–भूप' होते हैं; ऐसी भक्त–भूप (भक्तों की महाराज) 'रानी रत्नावतीजी' हुई हैं, इसका कारण नाभाजी लिखते हैं –

कथा–कीर्तन प्रीति भीर भक्तनि की भावै ।
महा महोत्सव मुदित नित्य नन्दलाल लड़ावै ।।

इनके राजदरबार में भक्तों की भीड़ लगी रहती थी, भीड़ की सेवा करना बहुत कठिन होती है, अनेक प्रकार के स्वभाव–गुण वाले भक्त आते हैं, उन सबको निभाना बहुत कठिन होता है; ऐसे इन सब भक्तजनों की सुचारु रूप से सेवा करने वाला ही 'भक्त–भूप' कहलाता है।

'भक्त–भूप' हर भक्त नहीं हो सकता, जिसके अन्दर अनन्त सहनशीलता, वात्सल्य गुण हो; वही भक्त–भूप बन सकता है। अधिकतर लोग अकेले–अकेले भजन कर सकते हैं, 'भगवान्' से मिल सकते हैं लेकिन 'भक्त–भूप' नहीं बन सकते, ये पद (भक्त–भूप का) सबको नहीं मिलता है। जैसे – स्त्रियाँ अनेक होती हैं, लेकिन 'जननी' वही बनती है, जिसके अन्दर वात्सल्य होता है; बाकी सब स्त्रियाँ नहीं बन सकती हैं, किसी–किसी में ये गुण होता है।

तो रानी रत्नावतीजी को 'भक्त–भूप' इसीलिये कहा गया है क्योंकि इनका हृदय बहुत विशाल था, इनके यहाँ कथा–कीर्तन कहने–सुनने वाले साधु–संत–भक्तजनों की भीड़ लगी रहती थी और उनके भोजन–प्रसाद की भी बहुत अच्छी व्यवस्था थी। संसार में राजा–रानी तो अनेक होते हैं लेकिन ये भक्ति में महारानी थीं (एक सच्ची रानी थीं)।

पुराणों में लिखा है कि जो लोग श्रीभगवान् के कथा–कीर्तन रूपी महोत्सव (जो सैकड़ों अश्वमेध–यज्ञ से बढ़कर है) को बड़ी धूमधाम से मनाते हैं, ऐसे उन बड़भागी जीवों का उत्सव स्वयं भगवान् अति हर्षित होकर नित्य धाम में मनाते हैं क्योंकि श्रीभगवान् 'भक्तजनों की सेवा' से बहुत अधिक प्रसन्न होते हैं।

भक्त–भूप रानी 'रत्नावतीजी' का भक्तों की भीड़ में भी निरन्तर श्रीभगवान् का चिन्तन चलता रहता था – 'मुकुन्द चरण चिन्तवन भक्ति महिमा ध्वजधारी।'

जैसे – सेना लड़ती है तो ध्वजा सबसे आगे चलने वाले के हाथ में रहती है, वह सबसे वीर होता है, उसके प्राण भले ही चले जाएँ लेकिन उसकी ध्वजा नीचे नहीं होगी। उसी प्रकार 'ब्रजगोपियों' को भी 'कृष्णप्रेम की ध्वजा' कहा गया है, उन्होंने श्रीकृष्ण के लिए संसार की लोक–लाज, मान–बड़ाई, देह–सुख इत्यादि सब कुछ छोड़कर कृष्ण–भक्ति का झंडा गिरने नहीं दिया। जहाँ भक्ति की ध्वजा रहती है, वहाँ कथा–कीर्तन वाले भक्तजनों की भीड़ बनी रहती है। ऐसी श्रेष्ठ भक्ताओं में रानी रत्नावती जी हुई हैं जो भक्ति की ध्वजा बनी हुई थीं, वे जहाँ गयी हैं, उनके साथ सैकड़ों नर–नारी उस ध्वजा के नीचे आकर कथा–कीर्तन कहते–सुनते थे।

परम करूणामय 'श्रीधाम'

बाबाश्री द्वारा कथित राधासुधानिधि–सत्संग (१/२/२०२३) से संकलित

यद्राधापदकिङ्करीकृतहृदां सम्यग्भवेद् गोचरम्
ध्येयं नैव कदापि यद्धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः ।
यत्प्रेमामृतसिन्धुसार रसदं पापैकभाजामपि
तद्वृन्दावन दुष्प्रवेश महिमाश्चर्य्यं हृदि स्फूर्जतु ॥

(श्रीराधासुधानिधि – २६५)

प्रतिष्ठित संत–महात्मा बनना आसान है । सभी संत–महात्मा अपने सम्मान, अपने गौरव की रक्षा करते हैं, किन्तु श्रीराधारानी की किंकरी यह सब कुछ नहीं सोचती, उसका अपना मान–सम्मान, अपनी हस्ती कुछ नहीं है, शून्य से भी नीचे है; केवल राधारानी सुखी होवें, इष्ट का मान, इष्ट का सुख, इष्ट की मर्यादा, केवल इसका ही उसे ध्यान रहता है। इसके अतिरिक्त न अपना मान, न अपना अपमान, न अपनी हस्ती, कुछ नहीं है, सब मिट गयी; तब वह 'राधापद–किङ्करी' का हृदय बन गया, ऐसी किङ्करी को सम्यक् वृन्दावन गोचर होगा, कण–कण राधाकृष्णमय दिखेगा। ऐसी स्थिति यदि नहीं है तो शायद ध्यान में भी श्रीजी अथवा वृन्दावन आये तो ग्रन्थकार कहते हैं कि श्रीजी की कृपा के बिना ध्यान में भी मन वृन्दावन अथवा श्रीजी का स्पर्श नहीं करेगा, न तो दिखाई पड़ेगा और न ही ध्यान में आएगा। तीसरी श्रेणी के हम जैसे लोग हैं, जिनको धाम का वास्तविक स्वरूप न तो प्रत्यक्ष दिखायी पड़ा, न ध्यान में आया तो क्या ब्रज से चले जाएँ ? ग्रन्थकार कहते हैं नहीं, यहाँ से बाहर मत जाओ, इसी धाम में पड़े रहो। क्यों ? यह ब्रज–वृन्दावन धाम 'प्रेमामृतसिन्धु के सार रस' को देने वाला है...

किसको ? जिन्होंने एकमात्र पाप ही किया है, महापापी या परम पापी से भी जो नीचे हैं, जो एकमात्र पाप के भागी हैं, अगर वे भी इस वृन्दावन में आते हैं तो क्या उनके ध्यान में इस धाम का वास्तविक स्वरूप आएगा तो ग्रन्थकार कहते हैं कि उन्हें यह 'धाम' प्रेमामृत के सिन्धु का सार दे देगा। इस महिमा को समझना बहुत कठिन है किन्तु समझो चाहे न समझो। यहाँ निवास करते हो तो प्रेमामृत के समुद्र का सार–रस तुमको मिलेगा क्योंकि यह धाम की महिमा है। इसीलिए अनन्य रसिक श्रीहरिरामव्यासजी ने गाया है – **श्रीराधेरानी मोहि अपनी करि लीजै ।**

और कछु मोहि भावत नाहीं, श्रीवृन्दावनरज दीजै ॥
खग–मृग–पशु–पंछी या वन के, चरणशरण रख लीजै ।
व्यास स्वामिनी की छबि निरखत, महल टहलनी कीजै ॥

जो चीज किसी भी तरह नहीं मिलेगी, वह इस धाम के आश्रय से मिलेगी। ऐसा विश्वास करके यहाँ पड़े रहो और विश्वास तब होगा, जब धाम के पशु–पक्षी में, यहाँ के कण–कण में तुम्हारा यह भाव हो जाएगा कि यह साक्षात् वृन्दावन है, **'वृन्दावने सङ्गताः'** – ये वृन्दावन के संगत हैं, साथ रहने वाले हैं; ऐसा भाव हुआ तो फिर न योग की आवश्यकता है और न ज्ञान की।

देखो री यह मुकुट की लटकन ।
रास लिए निरतत राधे संग, नूपुर शब्द पाँयन की पटकन ॥
पीताम्बर छुट जात छिनहि छिन, वैजन्ती बेसर की अटकन ।
सूरश्याम की या छवि ऊपर, झूठौ ज्ञान योग में भटकन ॥

रास में श्रीश्यामसुन्दर के साथ नृत्य करते समय श्रीजी के नाक की बेसर (मोती) उनकी माला में उलझ गयी। बस, यही ध्यान करे। योग की सिद्धियाँ और ज्ञान आदि में भटकना, उसमें जाना, ये सब बेकार है। केवल यहाँ की रज के आश्रय में पड़े रहो, तब तुमको यह छवि दिखायी पड़ेगी। धाम का आश्रय यदि बन जाए तो क्या कहना ? (श्रीबाबामहाराज 'सत्संग' में श्रोताओं से बोले) – बन ही गया है, आप लोग यहाँ बैठे हैं, हम सभी बैठे हैं, बिना श्रीराधारानी की कृपा के ऐसा हो ही नहीं सकता, ध्यान में भी नहीं आएगा – "ध्येयं नैव कदापि यद् धृदि विना तस्याः कृपास्पर्शतः" ऐसी दुष्प्रवेश धाम की महिमा है। 'प्रेमामृतसिन्धु का सार' भी आपको मिल जायेगा धाम की कृपा से। धाम की ऐसी दुष्प्रवेश महिमा में विश्वास करना बहुत कठिन है। फिर अपने आप ही पैसा–धेला की आसक्ति, समस्त ऐहिक आसक्तियाँ छूट जायेंगी। यदि इसकी महिमा में विश्वास

हो गया तो इस धाम का स्वरूप दिखायी पड़ेगा, इसका ध्यान होने लग जाएगा और ध्यान के बाद प्राप्ति हो जायेगी। इसलिए 'सब तज, हरि भज।' सब कुछ छोड़कर धाम में आ जाओ क्योंकि ऐसी धाम की महिमा है। कोई व्यक्ति यदि साधन नहीं कर सकता तो वह केवल धाम में आकर पड़ जाए, सब साधन अपने आप हो गया, इसमें कोई शंका नहीं है।

राधाकेलिकलासु साक्षिणि कदा वृन्दावने पावने
वत्स्यामि स्फुटमुज्ज्वलाद्भुतरसे प्रेमैकमत्ताकृतिः।
तेजोरूपनिकुञ्ज एव कलयन्नेत्रादि पिण्डस्थितम्
तादृक्स्वोचित दिव्यकोमलवपुः स्वीयं समालोकये॥

(श्रीराधासुधानिधि – २६६)

राधारानी की केलि की जितनी कलायें हैं, उसका साक्षी – देखने वाला, यह वृन्दावन बड़ा पवित्र है। पवित्र ही नहीं, अपितु पवित्र करने वाला है। स्वयं पवित्र होना अलग बात है और दूसरे को पवित्र करना अलग बात है। यह धाम पावनकारी है। पवित्र तो छोटी बात है, 'पवित्र' माने स्वयं पवित्र होना। 'पवि' माने इन्द्र का वज्र अर्थात् इन्द्र के वज्र जैसे किसी के पाप हैं, 'त्र' – उनसे जो बचाता है, वह 'पवित्र' है, उनसे भी आगे 'पावन' – जो दूसरों को बचाता है, वह 'वृन्दावन' पावन है। मैं ऐसे वृन्दावन में 'वत्स्यामि' – रहूँगी, कैसे वृन्दावन में, 'स्फुट' – प्रकट है, 'उज्ज्वलाद्भुतरसे' – उज्ज्वल अद्भुत रस में, 'प्रेमैकमत्ताकृतिः' – प्रेम की एकमात्र मत्त (मतवाली) आकृति, झूमती हुई, जैसे शराबी जब शराब पी लेता है तो नशे में झूमता रहता है, अतः वृन्दावन में रहने वाले की अद्भुत रस के प्रेम में मत्त आकृति हो जाती है, वह मतवाला हो जाता है। इसके बाद क्या मिलेगा ? 'तेजोरूपनिकुञ्ज एव कलयन्' – तेजोरूप, चिन्मय रूप को निकुञ्ज में ग्रहण करते हुए, 'नेत्रादिपिण्डस्थितम्' – दिव्य कोमल वपु (शरीर) हमें मिलेगा। 'तादृक्स्वोचितदिव्यकोमलवपुः' – किङ्करी का जो स्वरूप है, किङ्करी बड़ी ही कोमल वपु की होती है, इतनी कोमलता उसमें होती है कि लाल–ललना के अतिरिक्त त्रिलोकी – संसार की न सोचेगी, न समझेगी, 'स्वीयं' – ऐसे अपने किङ्करी वपु को, 'समालोकये' – देखेगी। यहाँ धाम में रज के आश्रय से वही दिव्य वपु (श्रीसहचरी का स्वरूप) मिलेगा।

धामवास कदापि निष्फल नहीं जाता है। कल्पों के अन्तराल के उपरान्त भी इसके फल की प्राप्ति होती है, जैसे काकभुशुण्डि जी को हुई। दुर्भिक्ष के कारण एक बार ये उज्जैन चले गए। वहाँ शैवोपासना करने लगे। साथ ही विष्णुद्रोह भी करने लगे। गुरु ने समझाया भी, विपरीतमति होने के कारण गुरु में ही अभावोत्पन्न हो गया। अनन्यता की ओट में संकीर्णता का पोषण एवं गुरुद्रोह करने लगे। एक समय गुरु को प्रणाम न किया। गुरु के परमोदार हृदय ने ध्यान भी न दिया किन्तु शशांकशेखर शम्भु इस अपराध पूर्ण संकीर्णता को सह न पाए और शाप दे दिया, "जा ! तामसी योनि में चला जा, एक हजार बार और जन्म–मरण को प्राप्त कर"। शाप से कोमल हृदय गुरु को संताप हुआ एवं उन्होंने रुद्राष्टक द्वारा शिव स्तुति की, साथ ही प्रार्थना की – "हे शम्भो ! यह बेचारा जीव है, आप इस पर कृपा करें, जिससे आपका शाप इसके लिए वर बन जाए।" गुरु की साधुता पर प्रसन्न हो कर शम्भु ने कहा – "यह सहस्र बार जन्म–मृत्यु तो निश्चित पायेगा किन्तु उसके दुःसह कष्ट से उन्मुक्त हो जाएगा। इसके अतिरिक्त किसी भी जन्म में इसकी ज्ञान हानि नहीं होगी।"

काकभुशुण्डि से शिव–वचन – हे शूद्र ! कई कारणों से तुझे इस विशेष कृपा की प्राप्ति हुई है – प्रथम तो तेरा जन्म धाम (अवधपुरी) में हुआ, द्वितीय तूने अपना मन मुझमें लगाया है; अतः धाम की कृपा व मेरी दया से तुम्हारे हृदय में भक्ति का उदय होगा –

पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें।
राम भगति उपजिहि उर तोरे॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड – १०९)

इस प्रकार से श्रीधाम की कृपा से
अनेक दुर्लभ भक्तिमय सद्गुणों की
प्राप्ति हुई।

श्रीमीराबाईजी की भाव-तरंगें

(१) बाला मैं वैरागण हूँगी ।
जिन भेषा म्हारो साहिब रीझे, सो ही भेष धरूँगी ॥
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी ।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी ॥
गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पहरूँगी ।
प्रेम-प्रीत सूँ हरिगुण गाऊँ, चरनन लिपट रहूँगी ॥
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, साधाँ संग रहूँगी ॥

(२) माई म्हाँने सपने में वरी गोपाल ।
राती पीरी चूनर पहरी, मँहदी पान रसाल ॥
काँई कराँ और संग भाँवर, म्हाँने जग जंजाल ।
'मीराँ' प्रभु गिरिधरनलाल सूँ, करी सगाई हाल ॥

(३) दे री माई अब म्हाँकों गिरिधरलाल ।
प्यारे चरण की आनि करत हों, और न दे मणिमाल ॥
नातो साँगो परिवारी सारो, मुँने लगै मनौ काल ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, छवि लखि भई निहाल ॥

(४) राणाजी मैं तो साँवरे के रँग राती ।
जिनके पिया परदेस बसत हैं, लिख-लिख भेजै पाती ॥
मेरे पिया मेरे हिये बसत हैं, यह सुख कह्यो न जाती ।
झूठा सुहाग जगत का री सजनी, होय-होय मिट जासी ॥
मैं तो एक अविनाशी बरूँगी, जाहि काल नहिं खासी ।
और तो प्याला पी-पी माती, मैं बिन पिये ही माती ॥
ये प्याला है प्रेम हरी का, मैं छकी रहूँ दिन राती ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, खोल मिली हरि छाती ॥

(५) मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥
साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय ।
न्हाय धोय जब देखन लागी, शालिग्राम गई पाय ।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन बनाय ।
न्हाय धोय जब पीवन लागी, होई अमर पचाय ।
सूली सेज राणाजी ने भेजी, दीजो मीरा सुलाय ।
साँझ भई मीरा सोवन लागी, मानो फूल बिछाय ।
'मीरा' के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय ।
भजन-भाव में मस्त डोलती, गिरिधर पै बलि जाय ॥

(६) अब मीरा मान लीज्यो म्हारी ।
होजी थाने सखियाँ बरजे सारी ॥
राजा बरजै रानी बरजै, बरजै सब परिवारी ।
कुँवर पाटवी सोभी बरजै, और सहेल्याँ सारी ।
शीश फूल सिर ऊपर सोहै, बिंदली सोभा भारी ।
गले गुंजारी कर में कंकणा, नेवर पहरे भारी ।
साधुन के ढिंग बैठ-बैठ के, लाज गमाई सारी ।
नित प्रति उठि नीच घर जाओ, कुल कूँ लगायो गारी ।
बड़ा घराँ का छोरू कहावो, नाचो दै-दै तारी ।
वर पायो हिन्दुवानी सूरज, अब दिल में कहा धारी ।
'मीरा' ने सतगुरुजी मिलिया, चरणकमल बलिहारी ॥

(७) म्हारे गुरु गोविन्दजी आण गौर ने ना पूजाँ ॥
औरज पूजै गौरज्याजी, थे क्यूँ पूजो न गौर ।
मन वांछत फल पावस्यो जी, थे क्यों पूजो और ।
नहिं म्हें पूजाँ गौरज्याजी, नहिं पूजाँ अनदेव ।
परम सनेही गोविन्दो थे, काँई जाणो म्हारो मेव ।
बाल सनेही गोविन्दो, साध संता को काम ।
थे बेटी राठोड़ की, थाने राज दियो भगवान् ।
राज करे वानें करणे दीज्यो, मैं भगताँ री दास ।
सेवा साधु जनन की म्हारे, राम मिलण की आस ।
लाजै पीहर सासरो, माई तणो मोसाल ।
सबही लाजै मेड़ातिया जी, थासूँ बुरा कहे संसार ।
चोरी कराँ न मारगी, नहीं मैं करूँ अकाज ।
भक्ती के मारग चलताँ, झख मारो संसार ।
नहिं मैं पीहर सासरे, नहिं पिया जी री साथ ।
'मीराँ' ने गोविन्द मिल्या जी, गुरु मिलिया रैदास ॥

(८) मन राम रंग ही लागो, म्हारा जीवरो धोको भागो रे ॥
हरि जी आया मेरे मन भाया, सेज डल्याँ रंग लाया ।
हरि जी मोपे किरपा कीनी, प्रेम पियाला पाया रे ।
साँचा से म्हारो साहिब राजी, झूँठा से मन भागो ।
अणी काया रो काँई भरोसो, काचा सूत रो धागो रे ।
पेल्याँ की मैं एक सुहागिन, हरि जी मुखड़े न बोल्या ।
अब तो भई मैं सदा सुहागिन, हरि जी अंतर खोल्या रे ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, चरणकमल चित लागो ।
जनम-जनम की दासी थाँरी, पूरण भाग अब जागो रे ॥

(९) मैं तो छोड़ी-छोड़ी कुल की लाज ।
रंगीलो राणो काँई करशी माणा राज ॥

पाँव में बाँधूँगी मैं घुँघरू, हाथ में लउँगी करताल ।
हरि के चरण आगे नाचती रे, काँई रीझैगो करतार ॥
जहर को प्यालो राणा जी ए भेज्यो, मीराबाई ने हाथ ।
करि चरणामृत पी गई रे, ठाकुर जी नो प्रसाद ॥
राणा जी ए रिस करि भेज्यो, जहरी नाग असार ।
पकड़ गले बिच डारियो, हो गयो चन्दनहार ॥
'मीरा' को तो गिरिधर मिलिया, जनम–जनम भर मार ।
मैं तो दासी जनम–जनम की, कृष्ण केत भरतार ॥

(१०) श्याम तेरी आरत लागी हो ।

गुरु प्रताप पाइया तन, दुर्मति भागी हो ॥
या तन कौ दियना करौं, मनसा की करौं बाती हो ।
तेल भरावौ प्रेम का, बारा मैं दिन–राती हो ॥
पाती पारौं ज्ञान की, सुमति माँग सँवारों हो ।
तेरे कारण साँवरे धन, जोवन वारों हो ॥
या सेजिया बहुरंग कीन्हे, बहुफूल बिछाये हो ।
पंथ मैं जोहूँ श्याम का, अजहुँ नहिं आये हो ॥
सावन भादों ऊमड़ा, वर्षा ऋतु आई हो ।
भौहें घटा घनघेरी, नैनन झरि लाई हो ॥
मात–पिता तुम कौ दियौ, तुम ही भल जानौं हो ।
तुम तजि और भरतार कौ, मन में नहिं आनो हो ॥
तुम प्रभु पूरण ब्रह्म हो, पूरण पद दीजै हो ।
'मीरा' व्याकुल विरहिणी, अपनी कर लीजै हो ॥

(११) सखी मेरी नींद नसानी हो ।

पिय को पंथ निहारताँ, सब रैन बिहानी हो ॥
सखियन मिलि–मिलि सीख दई, पै एक न मानी हो ।
बिन देखे कल ना परै, जिय ऐसी ठानी हो ॥
अंग छीन व्याकुल भई, मुख पिय–पिय वाणी हो ।
अंतर वेदन विरह की वहि, पीर न जानी हो ॥
ज्यौं चातक घन को रटै, मछरी बिनु पानी हो ।
'मीरा' व्याकुल विरहिनी, सुधि–बुधि बिसरानी हो ॥

(१२) तनक हरि चितवौ जी मेरी ओर ।

हम चितवत तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर ॥
मेरे आशा चितवनि तुमरी, और न दूजी दौर ।
तुमसे हमकूँ एक हो जी, हम सीं लाख करोर ॥
कब से ठाड़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर ।
'मीरा' के प्रभु हरि अविनाशी, देस्यूं प्राण अकोर ॥

(१३) राणाजी अब न रहूँगी तेरे हटकी ॥

साधू संग मोहे लागे प्यारो, लाज गई घूँघट की ।
हार सिंगार सभी ल्यो अपना, चूड़ी कर की पटकी ।
महल–दुमहले मोहे नहीं चहिये, रेशम सारी पटकी ।
सुन्दर मुखड़ा श्याम सलोना, सुरत आय दृग अटकी ।
पीहर मेड़ता छोड़ा आपण, सुरत निरत दोऊ चटकी ।
सतगुरु मुकर दिखाया घट का, नाचूँगी दे–दे चुटकी ।
मेरा सुहाग अब मोकूँ दरसा, और न जाने घट की ।
भई दीवानी 'मीरा' डोले, केश लटा सब छिटकी ॥

(१४) हरि बिन ना सरै री माई ।

मेरा प्राण निकस्या जात, हरि बिन ना सरै माई ॥
मीन दादुर बसत जल में, जल से उपजाई ।
तनक जल से बाहर कीन्हा, तुरत मर जाई ॥
कान लकरी बन परी, काठ घुन खाई ।
ले अगन प्रभु डार आये, भसम हो जाई ॥
बन–बन ढूँढ़त मैं फिरी, माई सुधि नहिं पाई ।
एक बेर दरसन दीजै, सब कसर मिटि जाई ॥
पात ज्यों पीली पड़ी, अरु बिपत तन छाई ।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर, मिल्या सुख छाई ॥

(१५) जोगिया कब रे मिलोगे आय ।

तुम्हरे कारण जोग लियो है, घर–घर अलख जगाय ।
दिन नहीं चैन रैन नहीं निंदिया, तुम बिन कछु न सुहाय ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, मिलकर तपन बुझाय ॥

(१६) जोगी मत जा पाँव परूँ में तोरी ।

प्रेम भक्ति को पंथ ही न्यारो, हमको ज्ञान बताजा ।
चन्दन की मैं चिता रचाऊँ, अपने हाथ जलाजा ।
जल–जल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगाजा ।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, जोत में जोत मिलाजा ॥

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ।" जहाँ तीनों चीजें एक साथ हों, उसे संगीत कहते हैं ।

बाबाश्री की संरचनाएँ

गीतगोविन्द–प्रणेता 'श्रीजयदेवजी'

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम् .....

(श्रीगीतगोविन्दम्)

इस प्रेम भरी हरि सेवा से, अन्तः में विकसित भाव भये ।
जब बना गीत गोविन्द काव्य, जिसमें ये रस के चोज नये ॥
इन भक्ति महारानी के वश, प्रभु मन मन्दिर में आते हैं ।
नहिं जोग ज्ञान तप साधन से, इनको वश में कर पाते हैं ॥
यह नया गीत गोविन्द काव्य, मत समझो कवि कल्पना मात्र ।
भोगी विषयी इन्द्रिय स्वार्थी, इसके पढ़ने का नहीं पात्र ॥
तत्सुखसुखिता का भाव जिसे, वो ही इस रस को झेलेगा ।
लीलानुभूति से बने गीत, गाकर दम्पति सुख देखेगा ॥
देखो प्रमाण में एक दिवस, कवि मान कथा जब करते थे ।
रूठी श्री राधा देवी के, प्रति अनुनय हरि का लिखते थे ॥
बोले प्रभु हे पुष्पित चरणे, तज मान करूँ मैं पद सेवा ।
मेरे मस्तक पर रखो चरण, तुम प्रेम रूप रस की सेवा ॥
छोड़ो यह मान प्रणयशीले, ऐसा प्रसंग टकराय गया ।
राधा पद हरि मस्तक रखने में, कवि के मन संकोच भया ॥
लेखनी छोड़ कवि गंगाजी, अवगाहन के हित चले गये ।
बनकर कवि हरि ने लिखा प्रिया, चरणों को अपने शीश लये ॥
लौटे जयदेव लिखा देखा, पूछा पद्मा से वह प्रसंग ।
बोली तुमने ही लिखा अभी, पूरा कर अपना छन्द भंग ॥
सुनकर कवि प्रेम विभोर हुए, समझा आये थे गिरिधारी ।
धन प्रेम शक्ति धन प्रेमीजन, याचक सेवक जहँ बनवारी ॥
ईश्वर को प्रेम तत्व जानो, यह प्रेम ईश से भिन्न नहीं ।
जो प्रेमहीन वह ईशहीन, जो कामहीन वह प्रेम सही ॥
यह प्रेम काम में अन्तर है, निःस्वार्थ स्वार्थ संयोग लक्ष्य ।
आकार साम्य पर तत्व भिन्न, समझै कोई सुविवेक दक्ष ॥
जिस प्रेम गली में आकर के, दीनता ईश भी लाते हैं ।
उस प्रेमामृत का आस्वादन, कोई बिरले कर पाते हैं ॥
जब सुयश गीत गोविन्द मधुर, का फैला जैसे चन्द्र धवल ।
सुन हर्षित रसिक समूह यथा, केकी सुन गर्जित मेघ नवल ॥
नृप रचित गीत गोविन्द और, था ग्रन्थ एक उस काल वहाँ ।
निज रचना पर गर्वित नृप था, तन रहते ममता गई कहाँ ॥
दोनों ग्रन्थों में कौन इष्ट, प्रभु का यह निर्णय करने को ।
मन्दिर में हरि के सम्मुख बन्द, किया विवाद के हरने को ॥
प्रभु ने राजा के बने ग्रन्थ, को दूर उठाकर फेंक दिया ।
अपनी माला पहराय भक्त, कवि रचना का सम्मान किया ॥
राजा भी भक्त तदपि मान, क्षति से मरने को उदधि चला ।
प्रभु ने समक्ष हो धैर्य दिया, जिससे यह संकट दूर टला ॥
कुछ छन्द गीत गोविन्द काव्य, बारवें सर्ग में दिया मिला ।
नृप रचना का भी अंश लिया, प्रभु मंगल सबका करें भला ॥

गीतगोविन्द–रसिक 'श्रीहरि'

श्रीजगन्नाथजी को सुनने में, काव्य बहुत ही प्यारा है ।
भक्तों की रचना ने जग में, हरि लीला रस विस्तारा है ॥
माली की एक सुता गाती, श्री सर्ग पाँचवें की लीला ।
यमुना तट सुखद वायु खेलैं, बन माली पहर झगा पीला ॥
वन में चंचल कर कमल लिये, गोपी कुच कुमकुम से गीला ।
यह गीत मुग्ध हो सुनते थे, बारी में फटा वस्त्र ढीला ॥
मानिनी राधिका की सुध में, ऐसे विभोर सब भूल गये ।
राधा जीवन जीवन राधा, आत्मा रस रूपा मान लिये ॥
रसदात्री ब्रजयूथेश्वरि हैं, रासेश्वरि हैं सर्वेश्वरि हैं ।
ये पराशक्ति आह्लादनि हैं, भोरी सरकार कृपा की हैं ॥
इनके बिन लालन विकल रहैं, जल बिना व्यथित ज्यों होय मीन ।
लीला यह प्रेम मधुर रस की, समझैं नहिं श्रद्धा भक्तिहीन ॥
श्रृंगार प्रेम रस उज्ज्वल है, नहिं काम कालिमा यहाँ तनक ।
निःस्वार्थ मिलन का अन्तर है, पीतल हो सकता नहीं कनक ॥
अपनी बिरहाकुल दशा राधिका, के हित सुना रसिक हरि ने ।
पर मन्दिर में पहुँचे जब वस्त्र, फटा देखा सहसा नृप ने ॥
पूछा यह वस्त्र फटा कैसे, सुनकर बोले श्रीजगन्नाथ ।
अनुभूति समक्ष सदा होती है, भक्ति कृपा का होय साथ ॥
बोले प्रभु सत्य अहो राजन्, मोहित मैं हुआ गीत सुनकर ।
भूला–भूला–सा फिरा उसी, माली की पुत्री के स्वर पर ॥
राजा भी रुचि को समझ पालकी, लेकर गया उसी वारी ।
थी जहाँ सुता वह माली की, गाती थी गीत प्रेम भारी ॥
कन्या को ले पालकी चढ़ा, आया मन्दिर में भेंट किया ।
सेवक का धर्म यही रुचिवशता, सेवा धर्म प्रमाण दिया ॥
सौंपा यह सेवा कार्य उसे, प्रभु सन्मुख गीतों को गावे ।
नित प्रेमलीन हो नृत्य करे, रस पद्धति से हरि दुलरावे ॥
आराधन के वश प्रभु होते, आराधन से तर है महान ।
आराधन ही से सेवनीय, सेवक अभिन्न होते प्रमान ॥

इससे ही एक रूपता दोनों, की होती है सत्य वचन ।
आराधन ही है शक्ति स्रोत, ऐश्वर्य स्रोत निःश्रेय रचन ॥
आराधन ही करता जीवों, की पापराशि को भस्मसात ।
फैलाता चित में भक्ति प्रभा, भास्वर भानो भाता प्रभात ॥
जो कुछ पाया जिसने भी जब, भी कुछ पाया आराधन से ।
शिव को शिवता विधि को विधिता, हरि को हरिता आराधन से ॥
आराधन ही बल गोपीजन, ने पकड़ नचाया नटवर को ।
अति विवश दासता कीड़ा मृग, से देखो तो परमेश्वर को ॥
कन्या गाती प्रेमाकुल हो, नाचती भक्ति सौन्दर्य पूर ।
यह दिव्य गीत गोविन्द गान, की महिमा तर्कों से सुदूर ॥
नृप ने आज्ञा दी सकल राज्य, कोई गीतों को यदि गावे ।
जोरी को सन्मुख जान सदा, शुभ आसन पर पहले ध्यावे ॥
फिर मधुर स्वरों से गीतों को, गावे पावे हरि–कृपा–दृष्टि ।
विश्वास सहित आराधन से, होती है उर में प्रेम–वृष्टि ॥
प्रभु निश्चय ही आते हैं इसका, श्रवण उन्हें प्यारा लगता ।
वे भाववश्य भावग्राही, सुनते हैं यदि प्रेमी गाता ॥
इक मीर मुगल सरदार भये, रुचि बढ़ी गीत गोविन्द गान ।
गाते थे क्रम से आसन पधरा, करके देकर के इष्ट मान ॥
इक दिन आसन की भूल भावना, चढ़े अश्व गाते निकले ।
पर प्रभु तो करते भूल नहीं, चाहे वह भक्त कभी भूले ॥
घोड़े के पीछे दौड़–दौड़, कर गीतों को सुन रहे भले ।
पीछे नुपूर धुनि सुन रुनझुन, देखा तो हरि आ रहे चले ॥
झट कूद मीर माधव चरणों, को पकड़ बहुत व्याकुल रोये ।
हा नाथ कष्ट इतना पाया, कह सरदारी तज जग खोये ॥
ऐसी रचना जयदेव भक्त, की लिखती जिसको सुरबाला ।
गाओ उनका जीवन–चरित्र, रीझें जिससे नन्द के लाला ॥

भक्तिमय–रहनी

इक बार संत सेवा हित कुछ, धन लेकर कवि वन में निकले ।
कुछ दुष्ट ठगों ने घेर लिया, एकान्त देखकर पकड़ चले ॥
बोले कवि तुम धन ले लो सब, पर कुछ तो करो साधु–सेवा ।
धन लेकर काटा हाथ–पाँव, खाई में डाले दुःख देवा ॥
प्रभु के भक्तों पर भी देखो, ऐसी घड़ियाँ आ जाती हैं ।
पर प्रेम–दिवानों का बिगाड़, वे कुछ भी नहिं कर पाती हैं ॥
ये ही घड़ियाँ भक्तों के धीरज, को पर्वत ठहराती हैं ।
ये अग्नि–परीक्षा सोने–पीतल, का अन्तर बतलाती हैं ॥
प्रेमी निष्काम सदा प्रियतम, से सुख–आशा नहिं रखता है ।
प्यारे की मधुर याद में वह, सुख–दुःख को भूला रहता है ॥
जग में ही चातक को देखो, बादल को टेरा करता है ।
उस पिउ–पिउ की धुनि को सुनकर, बादल निज रोष दिखाता है ॥
आँधी का लेकर योग गगन, में अंधकार फैलाता है ।
फिर गरज–गरज कर चातक को, नभ में निर्दय भटकाता है ॥
कभी–कभी तो अधिक खीझकर, पत्थर भी बरसाता है ।
वह लगा शक्ति पूरी अपनी, पर चातक हार न पाता है ॥
चातक तो भक्तों के आगे, छोटा–सा एक नमूना है ।
जो प्रेमी त्रिभुवनपति के हैं, उन–सा तो और कहूँ ना है ॥
कर पादहीन उस गड्ढे में, फिर भी प्रसन्न वे पड़े हुए ।
जगपावन श्रीहरिनामों का, मंगल उच्चारण किये हुए ॥
उस लीलाधारी की लीला, क्या–क्या ये रंग दिखाती है ।
वनखण्ड भूमि उस बीहड़ में, राजा की बग्घी आती है ॥
उस गड्ढे में हरि–कीर्तन की, धुनि सुना नृपति ने मधुर–मधुर ।
मधुपति वृन्दावनचन्द्र भामिनी, राधा के नायक सुन्दर ॥
कवि को निकाल गड्ढे से, पूछा किसने कर पद काट दिया ।
इतने पर भी ऐसे प्रसन्न, तुम महापुरुष यह जान लिया ॥
तुम परम सन्त मुखमण्डल की, आभा ऐसी ही कहती है ।
दर्शन ही से मैं हुआ धन्य, महिमा सन्तों की महती है ॥
बोले जयदेव अहो राजन्, मैंने ऐसा ही तन पाया ।
जो कुछ होता है भाग्य विवश, निज कर्मदोष सबने गाया ॥
ये रोग भोग संयोग वियोगादिक, शरीर के धर्म सभी ।
आवें जावें चाहे हरि स्मृति, वश हर्ष शोक मन होंय नहीं ॥
पालकी चढ़ाकर राजा ने, श्रद्धापूर्वक सम्मान किया ।
फिर राजभवन में पधराकर, अति प्रीति सहित उपचार किया ॥
श्रीकृष्णकथा–गंगा की धारा, राजमहल में वह निकली ।
डूबा सारा परिवार नृपति, का प्रजाजनों में भी फैली ॥
हो गया कृतार्थ नृपति जब, सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हुआ ।
सेवा का भूखा मैं स्वामी, आज्ञा कर दें मैं धन्य हुआ ॥
सज्जन पुरुषों की सेवा करने, की आज्ञा दी कविवर ने ।
तब होने लगी साधु–सेवा, नित अष्टयाम नृप के गृह में ॥
सन्तों के आते थे समूह, हरि–कीर्तन हरि–जस बहुत भये ।
अमृत प्रसाद को सन्त सभी, बहुविधि पाते थे छके हुए ॥
पूआ पूरी रसदार जलेबी, मोदक मोहन थार खीर ।
मेवों के बने बहुत व्यंजन, षट्रस के जो पोषक शरीर ॥

(भक्त जयदेव–चरित्र)

पतितनपावन कृष्ण राधावर, रमणबिहारी राधेश्याम ।
राधा कृष्ण दोऊ नाम अमिय रस,
राधापति जै–जै घनश्याम ।
जनमन भावन कृष्ण राधावर, रासबिहारी राधेश्याम ।
राधा गोरी घटा रसीली,

श्याम घटा सो मिली ललाम ।
ब्रजरस बरसन कृष्ण राधावर, युगल बिहारी राधेश्याम ।
(स्वर वंशी के, शब्द नूपुर के)

प्रेमदायिनी देहु प्रेम निज ।
याचत प्रेम तत्व तुमसों हरि, मेरो चित्त जाय रस सों भिज ॥
भोग मोक्ष की आशा फाँसी, फँस्यो मरत उपजत जिय मनसिज ॥
काम अग्नि की लपट जरत हौं, देहु बुझाय चरनरस सरसिज ॥
वेगि हरहु बाधा राधा यह, पल-पल आयु घटत है छिज-छिज ॥
(बरसाना)

रंगीली होरी आई, धूम मची बरसाने ॥
छैला दूलह आज बन्यौ है,
सखा संग लै आय अर्‌यौ है,
रात-दिना को खेल मच्यौ है,
नगारिन जोरी आई, धूम मची बरसाने ।
ढप बाजत सुन के ब्रजनारी,
चाव भई खेलन की भारी,
निकर परीं लै भानुदुलारी,
रूप की घटा सुहाई, धूम मची बरसाने ।
धाय चलीं बिन घूँघट मारै,
मतवारी अँचरा न सँवारै,
अनवट और बिछुवन छनकारें,
लगीं गावन सुखदाई, धूम मची बरसाने ।
चढ़े ग्वाल जोवन मदवारे,
नाँचैं अँखियन डोरा डारे,
नेंक न मानैं बकैं उघारे,
चली रंगन पिचकाई, धूम मची बरसाने ।
लै हाथन फूलन की छरियाँ,
लटक-लटक के मारैं सखियाँ,
सखा बचावैं लै फिरकैंयाँ,
हार ग्वालन नें पाई, धूम मची बरसाने ।
कह्यो श्याम ने सुनो रे भैया,
बरसाने की चतुर लुगैया,
फगुवा देवो घर बगदैया,
जीत राधे पै छाई, धूम मची बरसाने ॥
(रसिया रसेश्वरी)

कुंजद्वार बाजत वीणा कल ।
मंगल भोर शयन भुजवेष्टित, घन पुलकित वपु गौर सुश्यामल ॥ **श्रवण परायण अलसित वपु अति, लसित हेम मरकत छवि उज्ज्वल ॥**
प्रेम रसासव मत्त नयन युग, झूमत अर्धोन्मीलित उत्पल ॥ **अंकित कुच पर लोल कचावलि, तिमिर प्रगट शशि सिर शिव युग्मल ॥**
पत्रावली रहित मुख त्रोटित, मुक्तावली अधर पर कज्जल ॥
युग गंडन पर पीक अरुणिमा, विजिता मन्मथ मन्मथ श्यामल ॥
(अष्टयाम भावमालिका)

भावार्थ – सुन्दर वीणा कुञ्ज-द्वार पर बज रही है । प्रातः की मंगल वेला में गौर व नील की जोड़ी आलिंगित व रोमांचित शैया पर लेटी हुई है । आलस्य युक्त तन है । जो चमकते हुए स्वर्ण एवं मरकत मणि की उज्ज्वल छवि वाली है, वीणा सुन रही है । रस की मादकता से मद वाले युगल नयन आधे खिले नील कमल के समान झूम रहे हैं । आगे लटकते हुए केश समूह रूपी अन्धकार के मध्य में रेखांकित स्तन शशि युक्त युग शिवलिंग की भाँति सुशोभित हैं । मुख पत्रावली से रहित है । मुक्तामाला तोड़ी गई है, अधरों पर कज्जल है । दोनों कपोलों पर पान-पीक की लालिमा बता रही है कि इन्होंने श्याम साक्षात् मन्मथ मन्मथ को जीत लिया है ।

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् । महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥
(श्रीभागवतजी ६/३/३१)
भगवान् का संकीर्तन सारे विश्व का मंगल करता है, इससे बड़ी कोई औषधि नहीं है, इसके बल पर प्रह्लाद, विभीषण जीते । कोई यदि केवल अपने कर्म के बल पर लड़ाई जीतना चाहता है तो वह असम्भव है|

शास्त्र–संदेश 'संयम–पालन'

बाबाश्री के श्रीमद्भगवद्गीता–सत्संग (६/२/२०१२) से संकलित

(श्लोक ५९ की शेष व्याख्या...)

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

(श्रीगीताजी २/६८)

यही बात २/६१ में भी कही गयी है, इन दोनों श्लोकों २/६१ और २/६८ को मिला लो।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता – (२/६१) जिसकी इन्द्रियाँ विषयों से निगृहीत अर्थात् रोक ली गयी हैं, उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित हो गयी, संसार में कोई भी शक्ति उसे गिरा नहीं पाएगी, वह स्थितप्रज्ञ बन गया। केवल इसीलिए साधु बना जाता है कि हम 'स्थितप्रज्ञ' बनें, हमारी इन्द्रियाँ 'शरीर व संसार के विषयों' से रुक जाएँ। स्त्री हो या पुरुष हो, 'बाई या साधु' इसीलिए बना जाता है ताकि हम 'स्थितप्रज्ञ' बन जाएँ किन्तु विषयरस नहीं हटता है, वह तो भगवान् की अनुभूति के बाद हटता है, उसके पहले मनुष्य गिर जाएगा, निश्चित रूप से वह गिरेगा। यही बात 'भगवान्' गीताजी के श्लोक – २/५८ में कह रहे हैं कि इन्द्रियाँ जब विषयों से रोक ली गयीं तो निश्चित उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित हो गयी क्योंकि इन्द्रियाँ ही मनुष्य को गिराती हैं। 'इन्द्रिय' शब्द कैसे बना, इसको व्याकरण से समझो। 'इन्द्र' का अर्थ है – भगवान्, 'इन्द्रं जानाति', 'इन्द्र' शब्द से 'घ' प्रत्यय हुआ है। 'इन्द्र दत्तं' अर्थात् इन्द्रियाँ 'भगवान्' के द्वारा दी गयी हैं, काम करने के साधन हेतु 'इन्द्र व्याप्तं' अर्थात् इन्द्रियों में ही 'भगवान्' शक्ति रूप से घुस भी गए हैं; इसलिए इस अर्थ में 'इन्द्र' शब्द से 'इन्द्रिय' शब्द बना है, जिसके तीन अर्थ हुए – दत्त, व्याप्त और सेवित। 'भगवान्' की ही शक्ति से इन्द्रियाँ काम करती हैं। 'भगवान्' ने इन्द्रियों को दिया है और भगवान् ही उसमें व्याप्त हैं। अतः 'भगवान् की शक्ति' को हम विषयों में न खर्च करें, 'भगवान्' में ही लगा दें; यही सबसे बड़ी सेवा है और भक्ति है। कपिल भगवान् ने भी श्रीमद्भागवत (३/२५/३२) में यही कहा है –

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्मणाम्।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

(श्रीमद्भागवतजी ३/२५/३२)

'भक्ति' इन्द्रियों से शुरू होती है, ये याद रखना चाहिए। 'गुणलिङ्गानाम्' माने शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गन्ध – ये पाँच गुण हैं, इनका जो ज्ञान कराती हैं, वे हैं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, इनके अतिरिक्त पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। 'आनुश्रविक' माने वैदिक, वेद के अनुसार जो कर्म करता है। '५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ और मन' – इन ग्यारहों का जब 'भगवान्' में स्थिरीकरण हो जाता है तो उसे 'भक्ति' कहते हैं, 'भगवान्' में लग जाना, यही भक्ति है। इस परिभाषा से अपने को नापना चाहिए कि हमारी इन्द्रियाँ जब विषयों में गयीं तो हम 'भगवान्' से अलग हो गए। अपने आप को तौलने के लिए यह श्लोक है। हमने चोरी से लड्डू खा लिया, किसी ने देखा नहीं लेकिन इन्द्रिय तो हमारी चली गयी, जो हमने लड्डू चुराकर खाए, उससे सब भक्ति तो नष्ट हो गयी। किसी ने तुम्हारी चोरी नहीं देखी लेकिन तुम्हारी 'भक्ति' तो नष्ट हो गयी। इन्द्रियाँ जब विषयों की ओर गयीं तो निश्चय समझ लेना चाहिए, चाहे कोई देख रहा है, चाहे नहीं देख रहा है, हमारी 'भक्ति' नष्ट हो गयी। ठनाठन की भक्ति यही है कि इन्द्रियाँ विषयों की ओर न जाएँ। 'पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन' – इनकी स्वाभाविक वृत्ति 'भगवान्' में लग जाए, लगाना न पड़े, स्वभाव से इन्द्रियाँ उधर दौड़ें तो वह ठनाठन की भक्ति है, उसके पहले ठनाठन की भक्ति नहीं है। "यदा संहरते.....(श्रीगीताजी २/५२) कछुआ जैसे अपने अंगों को समेट लेता है, जहाँ बाहर खतरा आया, कछुआ अपने हाथ–पाँव और मुख को सिकोड़कर खोपटे के भीतर ले लेता है, उसका खोपटा इतना मजबूत होता है कि कोई उसे खा नहीं सकता फिर यदि कछुआ समुद्र के भीतर भी है, वहाँ हजारों खाने वाले जीव हैं लेकिन वे उसे खा नहीं सकते क्योंकि उसके अंग प्रतिष्ठित हो

गए। इसी तरह जब मनुष्य अंतर्मुख हो गया तो उसकी इन्द्रियों की वृत्तियाँ भी अंतर्मुखी हो गयीं। पाणिनि ने योगसूत्र में लिखा है – **"चित्तस्वरूपानुकार इव इन्द्रियाणां प्रत्याहारः।"** जब इन्द्रियाँ अंतर्मुख होती हैं तो जैसे चित्त प्रकाशमान है, सतोगुण से बना है तो उसी तरह से इन्द्रियों में भी चमक आती है, यह योगसूत्र में बताया गया है। 'चित्त' चमकदार है, उसका प्रकाश सूर्य–चन्द्रमा के समान है, वैसे ही इन्द्रियों के अंतर्मुख होने पर उनमें प्रकाश आ जाता है और भगवान् ने भी कहा है –

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥

(श्रीगीताजी १४/११)

इन्द्रिय ही नहीं, इन्द्रियों के दरवाजे तक में प्रकाश आ जाएगा। जहाँ से तुम लघुशंका करते हो, मल–मूत्र त्याग करते हो, वहाँ भी प्रकाश आ जाएगा। इसीलिए जैनधर्म के साधु नग्न रहते हैं, उनका मूत्र तक लोग पीते हैं प्रसाद समझकर, क्यों ? क्योंकि उनकी ऐसी मान्यता है कि इनके इन्द्रियद्वार में भी प्रकाश है, ये इतने शुद्ध हो गए हैं। ऋषभदेवजी से जैनधर्म शुरू हुआ है। भगवान् ऋषभ के मल–मूत्र तक से कई योजन दूर तक सुगन्ध फैला करती थी, यह चमत्कार भागवत में लिखा है, महापुरुषों में यह सामर्थ्य आ जाती है – **तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात् सुरभिं चकार।** (श्रीभागवतजी ५/५/३३)

दस योजन अर्थात् चालीस कोस (१२० किलोमीटर) तक ऋषभजी के मल से सुगन्ध फैला करती थी, योगी का अंग इतना शुद्ध हो जाता है, स्थितप्रज्ञ में इतनी शक्ति आ जाती है। जिसकी बुद्धि स्थिर हो गयी, विषयों में नहीं जा रही है, उसमें अनन्त शक्ति आ जाती है।

श्लोक – २/६०

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

'इन्द्रियों के निरोध' का प्रकरण चल रहा है। इस विषय में एक कथा है – वेदव्यासजी के शिष्य थे 'जैमिनीजी'। जब व्यासजी ने श्रीमद्भागवत की रचना की तो नौवें स्कन्ध में उन्होंने यह श्लोक लिखा –

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वान्समपि कर्षति॥

(श्रीभागवतजी ९/१९/१७)

"साधक को अपनी माँ, बहन और पुत्री के साथ भी एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए, न ही लेटना चाहिए क्योंकि इन्द्रियों का समुदाय बलवान है और ये इन्द्रियाँ विद्वान के मन को भी खींच लेती हैं।" इस विषय में जैमिनीजी को शंका हुई कि जो विद्वान है, वह कैसे इन्द्रियों द्वारा खिंचेगा ? उनके मन की शंका को व्यासजी जान गए। उसके निवारण हेतु उन्होंने एक माया रची। जैमिनीजी जिस वन में रहते थे, उस वन में संध्या के समय एक बड़ी सुन्दर युवती शरण लेने के लिए पहुँची और उसने जैमिनीजी से कहा कि यहाँ जंगल में बहुत से हिंसक जानवर हैं, अतः मुझको एक रात यहाँ सुरक्षित स्थान पर रहना है तो आपकी कुटिया सुरक्षित है। एक रात के लिए आप मुझको अपनी कुटिया में आश्रय दे दीजिए, मैं अशरण हूँ। जैमिनीजी ने कहा – "नहीं, मैं इस कुटिया में तुम्हें आश्रय नहीं दूँगा क्योंकि मेरे गुरुजी ने भागवत में लिखा है कि साधक को अपनी माँ, बहन और बेटी के साथ भी एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए, इसलिए मुझे उनकी आज्ञा का पालन करना है। 'गुरु का वाक्य' ही सबसे बड़ा मन्त्र होता है।" उनकी बात सुनकर वह युवती उदास होकर कुटी के बाहर गयी तो जैमिनी ऋषि को दया आ गयी, उन्होंने सोचा कि गुरुजी ने कहा है कि एक ही आसन या एक ही जगह पर नहीं रहना चाहिए, इसलिए हम अपनी कुटिया त्याग दें, यह अकेली यहाँ रह ले। इस तरह से तो गुरु के वाक्य का उल्लंघन भी नहीं होगा और अतिथि– पालन का धर्म भी पूरा हो जाएगा। जैमिनीजी ने उस युवती से कहा – "बेटी, तुम यहाँ आओ, मेरी कुटिया में तुम रह लो, मैं बाहर चला जाता हूँ।" इतने में ही बादल घिर आये और वर्षा के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। कुटी के बाहर जैमिनीजी विश्राम कर रहे थे और कुटी के भीतर वह

युवती थी। रात में जैमिनीजी को काम का वेग आया, उन्होंने सोचा कि रात को एकांत स्थान है, यह लड़की भी स्वयं ही आ गयी है तो मैं क्यों न अपनी इच्छा पूरी कर लूँ; यद्यपि उन्होंने यह भी कह दिया था कि रात को अगर मैं भी दरवाजा खुलवाऊँ तो मत खोलना क्योंकि गुरुजी की आज्ञा का पालन करना है परन्तु जब काम का वेग बढ़ता है तो जीव को अन्धा कर देता है, यह भगवान् ने कहा है –

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥

(श्रीगीताजी ३/३८)

कितनी भी प्रज्वलित 'अग्नि' है लेकिन धुआँ उसको ढक देता है अथवा 'शीशा' कितना भी बढ़िया है, मैल उसको ढक देता है। इसी प्रकार गर्भ के ऊपर झिल्ली ढकी रहती है, यद्यपि गर्भ हिलता-डुलता है, चेतनामय है फिर भी मुर्दा-सा बना रहता है। उसी तरह मनुष्य का 'ज्ञान' काम से ढक जाता है। इसी तरह से जैमिनीजी की 'ज्ञानाग्नि' काम रूपी धुएँ से ढक गयी और वह कुटी के दरवाजे पर पहुँचे और बोले – "दरवाजा खोलो।" उस लड़की ने कहा – "क्यों ?" जैमिनीजी बोले – "बादल हो रहे हैं, वर्षा होने वाली है और मैं भीग सकता हूँ।" उस लड़की ने कहा – "आप भीगिए, चाहे न भीगिए, मैं तो आपकी आज्ञा मानूँगी, आपने कहा था कि अगर रात को मैं भी कुटी खुलवाऊँ तो मत खोलना, अतः मैं नहीं खोलूँगी।" जैमिनीजी ने बहुत हल्ला मचाया लेकिन उस लड़की ने दरवाजा नहीं खोला। उनके काम का वेग बढ़ता गया, बीच-बीच में उस लड़की के आभूषणों की आवाज सुनाई देती थी। जैमिनीजी अपने काम-वेग को रोक नहीं सके और कुटिया की छत पर चढ़ गए, उन्होंने छत को काट दिया और छत काटकर नीचे कूदे कि अब तो वह युवती मिल ही जाएगी लेकिन जब उसकी शय्या के पास पहुँचे तो क्या देखा कि वहाँ युवती तो थी नहीं, वहाँ वेदव्यासजी हँस रहे थे; यह सब उनकी माया थी। जैमिनीजी सब समझ गए और बोले कि गुरुदेव ! आपने बिल्कुल सही कहा था।

मात्रा स्वस्रा..... (श्रीभागवतजी ९/१९/१७)

यही बात भगवान् ने भी कहा इस श्लोक में –

यततो ह्यपि कौन्तेय ..... (श्रीगीताजी २/६०)

हे कौन्तेय ! ऐसा पारगामी विद्वान जो साधन कर रहा है; इस श्लोक में प्रयुक्त शब्द 'विपश्चित' का अर्थ है – ऐसा पारगामी विद्वान जो उस पार की देख लेता है, ऐसे बड़े विद्वान् को 'विपश्चित' कहा गया है, सभी लोग ऐसे नहीं हो सकते; ऐसे विद्वान् की भी इन्द्रियाँ डकैत हैं क्योंकि वे मन को मथ देती हैं और जबरन मन का हरण कर लेती हैं; जैसे – कोई अपनी इच्छा से डाकू को धन नहीं देगा, वह जबरदस्ती भय दिखाकर धन को ले जाता है, उसी को डाकू कहते हैं। चोर और डाकू में अन्तर होता है – चोर चुपके से धन ले जाता है यद्यपि देने वाले की इच्छा नहीं है लेकिन छिपाकर ले जाता है और डाकू सामने से बलात् भय दिखाकर धन ले जाता है। इसी प्रकार इन्द्रियाँ जबरदस्ती मन का हरण कर लेती हैं, भय नहीं सम्मोहन के द्वारा हरण करती हैं। ऐसा सम्मोहन करती हैं इन्द्रियाँ कि सारे शरीर को, मन को और बुद्धि को मथ डालती हैं, विशेषकर मन का मन्थन करती हैं। मन को मथने के बाद ये समस्त इन्द्रियाँ स्वयं भी मथ जाती हैं। इसीलिए भगवान् ने कहा – "इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।" जैमिनी ऋषि अपने गुरु व्यासजी से बोले –

गुरुदेव ! आपने मेरी आँखें खोल दीं। जो मनुष्य मर्यादा पालन नहीं करता है, वह निश्चित साधन नहीं कर सकता, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष हो।

इसीलिए विरक्तों के लिए यह नियम बनाया गया कि अपनी माँ, बहन और बेटी के साथ भी एक आसन पर मत बैठो या उन्हें स्पर्श मत करो। शास्त्र में कहा गया है –

अहिरिव जनसंगम् सर्वदा वर्जेत यः कुणपमिव सुनारीम्।
त्यक्तु कामो विरागी विषमिव विषयान् मन्यमानो दुरन्तान्॥

सर्प कभी भी समुदाय में नहीं रहता है, इसी प्रकार विरक्त को भी जनसंपर्क से अलग रहना चाहिए, भीड़ में घुसने की कोशिश नहीं करना चाहिए। स्त्री के शरीर को मुर्दा का शरीर समझना चाहिए जैसे मुर्दे को छूने के बाद, श्मशान में फूंकने के बाद लोग स्नान करते हैं, वैसे ही विरक्त के लिए स्त्री का शरीर मुर्दा है, इसको छूने के बाद नहाना पड़ेगा। यह शास्त्र मर्यादा चाहे पुरुष हो या स्त्री, दोनों के लिए है। भजन परायण स्त्री है तो उसे भी पुरुष का शरीर, मुर्दा का शरीर समझना चाहिए, स्पर्श नहीं करना चाहिए।

अवधारणा से असली आराधना

बाबाश्री के सत्संग से संकलित

'श्रीनाम–संकीर्तन' एक ऐसा साधन है कि इसकी महिमा लोग बार–बार सुनते हैं फिर भी कर नहीं पाते हैं। ऐसा समझ लो कि श्रीमद्भागवत का फल ही है – 'नाम–संकीर्तन'। सबका सार यही है कि भगवान् श्यामसुन्दर का नाम कीर्तन करो और देखो कि बहुत दिन तक जीने से क्या लाभ है, वास्तविक जीना तो यही है कि नामकीर्तन करते हुए जियें, इसका नाम जीवन है। प्राचीनकाल में खट्वांग नामक एक राजा हुए हैं, उन्होंने दो घड़ी में ही परम पद प्राप्त कर लिया। ऐसे ही केवल कृष्णनाम–कीर्तन करो तो जियो और नहीं तो जीने का कोई फल नहीं है। नामकीर्तन करो अथवा सुनो। भागवतकथा के श्रोताओं को अपने घर जाकर केवल कृष्ण–कीर्तन करना चाहिए। एक क्षण, दो क्षण, एक मिनट, दो मिनट – केवल नामकीर्तन की ध्वनि से ही सारा घर तीर्थ बन जाएगा। यही जीवन का वास्तविक फल है। अन्तकाल (मृत्युसमय) आने पर मनुष्य को घबराना नहीं चाहिए। घबराने की क्या बात है, भगवान् तो काल के भी महाकाल हैं। मरणासन्न व्यक्ति अपने मन को जीतकर 'ब्रह्माक्षर प्रणव' का जप करते हुए भगवान् का ध्यान करे, यहाँ प्रणव से अभिप्राय है – 'भगवन्नाम'। भगवान् का ध्यान करे, क्यों ? क्योंकि शुकदेवजी ने भगवान् का ध्यान करने को कहा है। भगवन्नाम और प्रणव एक ही है। शुकदेवजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के एक–एक अंग का ध्यान करे और धारणा द्वारा मन को वश में करे। भगवान् की धारणा और ध्यान के द्वारा क्या होता है ? जितने भी मल होते हैं , वे जल जाते हैं। देखो, अब यहाँ यह समझना चाहिए कि जैसे हमलोग आँख बंद करके ध्यान करते हैं तो बहुत से जो अधकचरे ज्ञानी होते हैं, वे कहते हैं कि अरे यह तो कल्पना का रूप है। (जिसका तुम ध्यान करते हो) इससे क्या लाभ होने वाला है ? यह मूर्खों की बात है। असद् वस्तु में मन लगना कल्पना होता है और जब सद् वस्तु में मन चलता है तो यह 'भावना' कही जाती है। प्राकृत काव्यकारों ने भी कहा है – **'निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथम विक्रिया' –** निर्विकारी चित्त की क्रिया 'भाव' है। अगर ठीक से शब्दार्थ किया जाए तो चित्त निर्विकारी तो होना ही चाहिए। 'निर्विकारी' का मतलब यही नहीं है कि अन्य भाव आदि को विकार मान लिया जाए। निर्विकारी का वैष्णव दृष्टि से यह भी तात्पर्य है कि हम 'भावना' कर रहे हैं तो चित्त सांसारिक विकारों से दूषित नहीं होना चाहिए। इसलिए शुकदेवजी कह रहे हैं – **"यच्छेद्धारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम्" –** (श्रीभागवतजी २/१/२०)

ध्यान–धारणा से मन के जितने भी मल हैं, वे सब नष्ट हो जायेंगे। अब यहाँ राजा परीक्षितजी ने श्रीशुकदेवजी से प्रश्न किया – महाराज ! यह बताइये कि 'धारणा' क्या वस्तु है, ध्यान तो हम थोड़ा बहुत समझ भी लेते हैं।

तब श्रीशुकदेवजी ने धारणा का जो स्वरूप बताया उसे हमें ठीक से समझना चाहिए क्योंकि बहुत से लोग घबराते हैं, वे कहते हैं कि हम तो रसिक हैं, भागवतजी में तो बहुत–सी फ़ालतू बातें भी हैं; ऐसा नहीं है, इसे समझो। जैसे – हम ब्रज–उपासना कर रहे हैं तो ब्रज–उपासना भी उसी शैली की है जैसी शुकदेवजी बता रहे हैं। ब्रज की उपासना खेल नहीं है। सब लोग कहते हैं कि हम भक्त हैं, ब्रज में आये हैं, भक्ति कर रहे हैं किन्तु भक्ति खेल नहीं है। ब्रज की उपासना करना भी बहुत कठिन है। ब्रजोपासना में कहा गया है –

सद्योगीन्द्र सुदृश्यसान्द्ररसदानन्दैकसन्मूर्त्तयः
सर्वेऽप्यद्भुतसन्महिम्नि मधुरे वृन्दावने सङ्गताः ।
ये क्रूरा अपि पापिनो न च सतां सम्भाष्य दृश्याश्च ये
सर्वान् वस्तुतया निरीक्ष्य परमस्वाराध्यबुद्धिर्मम ॥

(श्रीराधासुधानिधि – २६४)

जो ब्रज में क्रूर लोग रह रहे हैं, चोर हैं, रात को आकर पैसा छीनकर मार जायेंगे, पापी हैं, इतने ज्यादा पापी हैं कि देखने योग्य नहीं हैं, बोलने योग्य नहीं हैं, उनको इस रूप में देखकर भी ऐसी बुद्धि करो कि ये परम स्वाराध्य

(साक्षात् श्रीइष्ट) हैं, ये है ब्रज की उपासना; अब यह कितना कठिन है। एक रसिक संत कहते हैं –

श्रीराधेरानी मोहि अपनी करि लीजै।
और कछु मोहि भावत नाहीं, श्रीवृन्दावनरज दीजै॥
खग–मृग–पशु–पंछी या वन के, चरणशरण रख लीजै।
'व्यास' स्वामिनी की छबि निरखत, महल टहलनी कीजै॥

इस ब्रज के खग–मृग, पशु–पक्षी आदि सब वन्दनीय हैं; इन सबके प्रति वही परम स्वराध्य भाव (श्रीभगवद्भाव) रखना चाहिए, तब तो यह ब्रजोपासना है। दानलीला में श्रीठाकुरजी कहते हैं – "ब्रज–वृन्दावन गिरि नदी, पशु पक्षी सब संग। इनसों कहा दुराव प्यारी, ये सब मेरे अंग॥"

ब्रज में लता–पता आदि जो कुछ भी दिखाई दे रहे हैं, श्यामसुंदर कहते हैं कि ये सब मेरा रूप हैं। हम लोगों को अपनी स्थूल दृष्टि से ब्रज में जो कुछ दिखाई पड़ता है कि यह पापी है, यह पीलू का, ढाक का वृक्ष है जबकि महापुरुष कहते हैं – "रसिकन पारिजात यह दीखत, विमुखन ढाक पिलूख।" रसिकों को ब्रज के वृक्ष साक्षात् पारिजात दिखाई पड़ते हैं और हमको ढाक या पीलू के वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। अभी हमें जो ब्रज का विकृत रूप दिखाई पड़ रहा है, इसके प्रति भी हमें वही चिन्मय भाव स्थापित करना पड़ेगा कि यह वही दिव्य ब्रज है।

यही बात शुकदेवजी यहाँ सिखा रहे हैं कि जितना भी संसार हमें दिखाई पड़ रहा है, यह सब भगवान् का स्वरुप है, यही धारणा करो। यदि तत्त्व दृष्टि से, सिद्धान्त के अनुसार देखा जाय तो रसिकों के सिद्धान्त में और भागवत के सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं है, केवल एक समझ का अन्तर है। लोगों ने व्यर्थ के लिए भेद की एक बहुत बड़ी दीवाल अपने चित्त में बढ़ा रखी है, जबकि भेद कुछ नहीं है। धारणा कैसी है, इसे शुकदेवजी बताते हैं कि यह जो संसार का स्थूल रूप है, इसे ऐसा समझो कि यह भगवान् का रूप है। जैसे 'ब्रज का उपासकजन' ब्रज के कण–कण में चिन्मय भाव लाने का प्रयास करते हैं। अभयरामजी कहते हैं – "धनि–धनि वृन्दावन के गदहा प्यारे" बहुत से लोग उनके पदों को गा–गाकर हँसते हैं, जैसे – "धनि–धनि वृन्दावन की चींटी" "धनि–धनि वृन्दावन के कूकर" "धनि–धनि वृन्दावन के सूकर"

इन पदों को पढ़कर लोग सोचते हैं कि अभयरामजी ने यह क्या गा दिया। यह जो उन्होंने गा दिया, इसे हम समझ नहीं सकते और यह हमें परिहास लगता है परन्तु यह परिहास की बात नहीं है। इसका अभिप्राय यह है कि वृन्दावन के कूकर, वृन्दावन के शूकर और वृन्दावन के गधा, इन सबमें चिन्मय भाव रखो, इसी का नाम भावुकता है। यदि इनके प्रति भावुकता नहीं रखोगे, वही स्थूल दृष्टि बनाए रखोगे तो कैसे तुम ब्रज के उपासक बोले जाओगे। अरे, हम लोगों से तो इस संसार के प्राकृत प्रेमी अच्छे हैं, जैसे – मजनू ने कहा कि लैला की गली का कुत्ता भी मेरा पूज्य है और हम लोग ब्रज में आकर यदि दोषदृष्टि करते हैं कि अरे ! यहाँ तो बड़ी गड़बड़ी है, यहाँ के लोग पैसा माँगते हैं, ऐसा करते हैं, वैसा करते हैं तो ऐसा नहीं सोचना चाहिए। इसीलिए सारा संसार भगवान् का ही रूप है, ये 'धारणा' का स्वरूप है। यही बात शुकदेवजी सिखा रहे हैं कि ब्रह्माण्ड सात आवरणों से युक्त है। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, महत्तत्व और प्रकृति – ये सात आवरण हैं। ये सब भगवान् का स्थूल शरीर है।

"वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः"

भगवान् ही इस पृथ्वी के अधिष्ठाता पुरुष हैं। कैसे ? इसके लिए धारणा करना चाहिए। पाताल तो उन आदि पुरुष भगवान् के चरण हैं, दोनों गुल्फ महातल हैं, जाँघें तलातल है, उरुद्वय वितल और अतल हैं, ग्रीवा महर्लोक है तथा आदिपुरुष का ललाट सत्यलोक है, इन्द्रादि देवता उनकी भुजायें हैं, दिशाएँ उनके कान हैं, मुख अग्नि है और उनके नेत्र ही सूर्य आदि हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड की जितनी भी विभूतियाँ हैं, ये सब भगवान् का स्वरूप हैं। इस तरह विराट का स्थूल से स्थूल रूप जो यह ब्रह्माण्ड है, इसमें जब भगवद्धारणा स्थित हो जाती है तब उस व्यक्ति को सभी वृत्तियों में भगवान् ही अनुभूत होते हैं और उन भगवान् को, जो सत्य और आनन्द की निधि हैं, उनका भजन करने वाला अन्यत्र (किसी अन्य वस्तु में) आसक्त नहीं होता है तथा उसका आत्मपात नहीं होता है।

वास्तविक ब्रजाराधक 'बाबाश्री'

गुण–गरिमागार, करुणा–पारावार, युगललब्ध–साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा–वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मंद मति की गति विथकित हो जाती है।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी ।
कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे ।
साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

(श्रीरामचरितमानसजी, बालकाण्ड –३)

पुनरपि

जो सुख होत गोपालहि गाये ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाये ।

(सूरविनयपत्रिका)

अथवा

रस सागर गोविन्द नाम है रसना जो तू गाये ।
तो जड़ जीव जनम की तेरी बिगड़ी हू बन जाये ॥
जनम–जनम की जाये मलिनता उज्वलता आ जाये ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित बरसाना से संग्रहीत)

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह लेख, मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पायेगा, अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में। सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य विभूति का प्रकर्ष आर्ष जीवन चरित्र कहीं लेखन–कथन का विषय है ?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

(सूरविनयपत्रिका)

मलिन अन्तस् में सिद्ध संतों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक–लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया अतएव सार्वभौम महत्–वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य–दान दिया। माता–पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे। ईश्वरीययोजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल (शुक्ल भगवान् जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को संतान सुख अप्राप्य रहा, संतान प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र कामना ने व्यथित किया। पुत्र प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया। शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

"यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव–जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।"

वही हुआ, गुरु–शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्प काल में अध्ययन समापन भी हो गया।

"अल्पकाल विद्या बहु पायी"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन–वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े–बड़े संगीतमार्तण्डों को। प्रयागराज को

भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "**तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि**" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का। अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण–परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया, सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास स्थल पूज्यपाद का भी वनवास स्थान रहा। "**स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे**" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आंतक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार–बार पाद–पदमों को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना। मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया। मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है। बरसाने में आकर तन–मन–नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए। श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरंतर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्वल कान्ति से आलोकित–अलंकृत युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न "श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान बरसाना, बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित गहवर वाटिका "**बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार**" और उस गहवरवन में भी महासदाशया मानिनी का मन–भावन मान–स्थान श्री मानमंदिर ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा। मानगढ़, ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है। उस समय तो यह बीहड़ स्थान दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मंदिर प्रांगण में न आने देता। मंदिर का आंतरिक मूल स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय?

भय को भगाकर भावना की – "**तस्कराणां पतये नमः**" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप–पंक के चोर को भी एवं रकम–बैंक के चोर को भी। ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे, इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोहदृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरुप जो ठहरे। फिर तो शनैः–शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया।

जग–हित–निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं। श्रीमन् चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज ३५ हजार से अधिक गाँवों में प्रभातफेरी के माध्यम से श्रीभगवन्नाम निनादित हो रहा है। ब्रज के कृष्ण लीला सम्बंधित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के साथ–साथ सहस्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया। अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें, सन् २००९ में "राधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर, इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा। समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनामसंकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य–गान हुआ, नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया। दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य सत्ता भी

नत हो गयी। गौ वंश के रक्षार्थ गत १६ वर्ष पूर्व माताजी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज ५५,००० से अधिक गायों का मातृवत पालन हो रहा है। संग्रह–परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की भगवन्नाम ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है। परम विरक्त होते हुए भी बड़े–बड़े कार्य संपादित किये, इन ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने, गत सत्तर (७०) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं। ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं। असंख्यों आपके सान्निध्य–सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं, इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय। वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि के जिस अतल–तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है। आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल मिलन का सौख्य इन गहन भाव–दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही संभव है। आपकी अनुपम कृतियाँ – **श्रीरसिया रसेश्वरी**, **स्वर वंशी के शब्द नूपुर के**, **बरसाना**, **भक्तद्वय चरित्र (श्रीजयदेवजी व बिल्वमंगलजी)**, **अष्टयाम–भावमालिका** इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है। साधक–साधु–सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन। दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन अध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केंद्र बन गयी। सैकड़ों ने छोड़ दिए घर–द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं। वस्तुतः धर्म का तत्व तो गुहा में ही छिपा हुआ है। तब कैसे ढूँढ़ें? कहाँ जाएं ? क्या करें ? व्यथित होने की आवश्यकता नहीं, ये महापुरुष जिस मार्ग का सृजन करते हुए गये हैं, **न स्खलेन्न पतेदिह** – आरूढ़ हो जाओ उस मार्ग पर, जहाँ न स्खलन का भय है, न पतन का ही फिर हम जैसे भ्रांत परिश्रान्त पथिकों के लिए इन महापुरुषों का देदीप्यमान जीवन–चरित्र ही तो निर्भ्रान्त पथ–प्रदर्शक है।

धन्य तो है इस वसुन्धरा का पवित्र अंचल जो सदा से सन्त परम्परा से विभूषित होता रहा है।

महाकवि भवभूति की भविष्य वाणी –

'उत्पत्स्यते तु मम कोऽपि समानधर्मा। कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥'

ऐसी पावन परम्परा में, संसार प्रवास की स्वल्पावधि में विपुल लोकोपकार करने वाले इन महापुरुष का अवतरण भी किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही हुआ है। रस–सिद्ध–संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पायी। श्रीजी की यह गह्वर वाटिका जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग स्वस्तिवाचन कर रहा है। ऐसा महिमान्वित–सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है। आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

प्रार्थना है अवतरित प्रीति–प्रतिमा विभूति से कि निज पादाम्बुजों का अनुगमन करने की शक्ति हम सबको प्रदान करें। आपकी प्रेम प्रदायिका, परम पुनीता पद–रज–कणिका को पुनः–पुनः प्रणाम है।

गौ–सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का
Account number दिया जा रहा है –
SHRI MATAJI GAUSHALA,
GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd **A/C – 915010000494364**
IFSC – UTIB0001058 **BRANCH – KOSI KALAN,** **MOB. NO. – 9927916699**

उपराम होने का उपाय

बाबाश्री की श्रीभागवतसप्ताह से संकलित

हममें और एक भक्त में यही अंतर है कि हम भी इस संसार को देखते हैं और एक भक्त भी देखता है किन्तु भक्त सर्वत्र भगवान् की धारणा रखता है तो संसार के इन्ही दृश्यों को देखते हुए भी वह कृष्ण को प्राप्त हो जाता है और हम लोग संसार में भगवान् की धारणा न करके प्राकृत धारणा करते हैं, अतः इस कारण से हमारा आत्मपात हो जाता है। यह केवल दृष्टि का भेद है।

सबसे पहले शुकदेवजी ने धारणा का उपदेश दिया और उसके बाद शेष कथा कही। शुकदेवजी ने धारणा का जो उपदेश दिया, वह धारणा सर्वत्र आवश्यक है। ब्रज उपासना में उस धारणा का क्या स्वरूप है, यह पहले ही बताया जा चुका है क्योंकि इसे बिना समझे कभी-कभी लोग आलोचना करने लगते हैं। जैसे भागवत में धारणा के अन्तर्गत सब कुछ भगवान् को ही बताया गया, उसी प्रकार ब्रज उपासना में भी धारणा का छोटा सा उदाहरण देखिये। श्रीजी दान लीला के प्रसंग में श्यामसुंदर से कहती हैं – 'हे प्यारे ! आप इस प्रकार से साँकरी खोर में दान ले रहे हैं तो यहाँ ब्रज के सब जीव देख रहे हैं। ' उस समय श्यामसुन्दर कहते हैं – 'हे किशोरी जू ! वस्तुतः यह सब मेरा अंग है। '

ब्रज वृन्दावन गिरि नदी पशु-पक्षी सब संग
इनसो कहा दुराव प्यारी ये सब मेरो अंग

ब्रज लाल-लाड़िली का अंग माना जाता है। यहाँ तक कि जो बरसाने का श्रीजी के करकमलों से निर्मित गह्वरवन है, यह स्थली सखीरूपा है। यह यहाँ की धारणा है। रसिक महापुरुषों ने इस स्थली (गह्वरवन) के सहचरी रूप का वर्णन किया है –

चलत्पदस्पर्शमवाप्य सास्थली सुनिर्वृताभूत्प्रथमं ततः परम्। अन्यत्र तत्पादमवेक्ष्य चेर्ष्यया किंचिन्मलिम्नश्छलतोऽश्रु बिभ्रती ॥

(वृषभानुपुर शतक – ६)

बरसाने की एक-एक स्थली सहचरी रूपा है और सहचरीगण श्रीजी के श्रीचरण का प्रकाश हैं। अतः केवल क्रम, कहने का ढंग कुछ अलग मालूम पड़ता है किन्तु परिपाटी वही है। उपासक जहाँ कहीं भी जाता है, उसको वही क्रम रखना पड़ता है।

द्वितीय स्कन्ध में शुकमुनि ने सबसे पहले धारणा बतायी कि सब कुछ प्रभु है, प्रभु का ही अंग है। आगे उन्होंने बताया कि ब्रह्माजी को भी जो कुछ प्राप्ति हुई, इसी धारणा से हुई कि सब कुछ प्रभु हैं।

एवं पुरा धारणयाऽऽत्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात्। (श्रीभागवतजी २/२/१)

उपासक के लिए धारणा का बहुत महत्व है। गुरु या भावुक महापुरुष क्या करते हैं, वे हमारे चित्त में सबसे पहले धारणा का संशोधन करते हैं। यह उपासना की नींव है। नींव यदि गड़बड़ हो जायेगी तो मकान भी गड़बड़ हो जाएगा। धारणा का ही पोषण भागवत में आगे सभी महापुरुषों ने किया है। कपिल भगवान् भी धारणा का पोषण करते हैं –

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥

(श्रीभागवत-३/२९/२१)

भगवान् कहते हैं कि चाहे कोई कितना भी भजन करे, मेरे श्रीविग्रह की सेवा करे परन्तु यदि उसकी धारणा गलत है तो मेरी सेवा-पूजा केवल विडम्बना है, केवल स्वांग मात्र है। उन्होंने आगे यहाँ तक कह दिया कि

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्।
हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः ॥

(श्रीभागवतजी ३/२९/२२)

यदि हमारी धारणा गड़बड़ है तो **भस्मन्येव जुहोति सः** – जैसे राख में हवन किया जाये, वैसे ही अर्चा (ठाकुर जी की पूजा) सब तरह से व्यर्थ हो जाती है। यह कितनी गम्भीर बात कपिल भगवान् ने कही है, इसे आगे तीसरे स्कन्ध में विस्तार से बताया जाएगा।

जो सद्गुरु होते हैं, वे धारणा का ही शोधन करते हैं। धारणा को सँभालने के बाद शुकदेवजी उसका महत्व

बता रहे हैं कि धारणा के ही द्वारा ब्रह्माजी ने अपनी नष्ट स्मृति प्राप्त की और सारे संसार की रचना की। जो वेद भगवान् हैं, ये शब्द ब्रह्म हैं, इनके भी बीच में जो विद्वान् लोग हैं, वे प्रयोजन मात्र ही व्यवहार रखते हैं, अन्यत्र नहीं, क्योंकि परिश्रम व्यर्थ जाता है। प्रयोजन क्या है, जिससे केवल भगवद् भक्ति और उपासना का पोषण हो, विद्वान् लोग उतना ही ग्रहण करते हैं। अन्य जो कर्म की श्रुतियाँ हैं, सकाम कर्म का प्रतिपादन करती हैं। रोचनार्था फल श्रुति जितनी भी हैं, उन सबको विद्वान लोग छोड़ देते हैं।

शुकदेवजी महाराज बता रहे हैं कि संसार में जितने भी लोग हैं, चाहे विद्वान् हैं परन्तु पता नहीं क्यों जब (शयन करने के लिए) पृथ्वी है तो फिर भी अच्छे–अच्छे पलंग खरीदते हैं, बड़े अच्छे गद्दों का प्रयोग करते हैं, जब अपनी भुजा है (फिर भी) अच्छे–अच्छे तकिया खरीदते हैं। हाथों से (अंजलि बांधकर) जल पी सकते हैं परन्तु फिर भी अच्छे–अच्छे जल पात्र खरीदते हैं। क्यों खरीदते हैं, क्यों संग्रह करते हैं ? यह तो अविवेक है, अज्ञान है। कुम्भनदास जी (महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शिष्य व अष्टछाप के महान संत) के पास दर्पण भी नहीं था, पत्थर की कठौती में जल भरकर, उसी में देखकर तिलक किया करते थे। स्वामी हरिदास जी अपने शरीर पर ब्रजरज का लेप करते थे, उनके पास रहने के लिए कोई कुटिया भी नहीं थी, निधि–वन की लताओं–कुंजों में पड़े रहते थे। ये लोग सच्चे महापुरुष थे, इन्होंने संसार की वस्तुओं को असार समझा, ये सच्चे रसिक थे, बाकी और जितने भी विद्वान् धन और मायिक पदार्थों का जो संग्रह करते हैं, वह संग्रह व्यर्थ है।

शुकदेवजी कहते हैं –

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां।
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्।
कस्माद् भजंति कवयो धनदुर्मदान्धान्॥

(श्रीभागवत–२/२/५)

आश्चर्य है, ये विद्वान् हैं, कवि हैं फिर भी धन के नशे में मदान्ध हुए धनिकों की चापलूसी करते हैं, उनका आश्रय लेते हैं। वस्त्र यदि नहीं है तो रास्ते में पड़े हुए चीथड़े लेकर पहन लो। भोजन यदि नहीं है तो पेड़ के सूखे पत्ते चबा लो। वृन्दावन महिमामृत शतक के रचयिता कहते हैं।

भोक्तुं स्वादुं निकामं सकल तरुतले
शीर्ण पर्णानि सन्ति
स्वच्छन्द स्वछन्दमेवास्ति.....

पीने के लिए यमुना जी का जल है, खाने के लिए लता–पता के सूखे पत्ते पड़े हुए हैं।

शुकदेवजी आगे कहते हैं – **रुद्धा गुहाः–** क्या गुफायें बंद हो गयी हैं जो हम लोग बड़े–बड़े मकान बनाने में लगे रहते हैं, क्या अजित श्यामसुन्दर भक्तों की रक्षा नहीं करते हैं, जो हम लोग अपनी रक्षा की चिन्ता करते हैं। फिर क्यों विद्वान् लोग धन के दुर्मदान्ध लोगों के पीछे–पीछे घूमा करते हैं कि सेठ लोग कुछ धन दे जायेंगे। क्या है इनकी विद्या?

शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं – विद्या का यही फल है कि इस प्रकार की धारणा से प्रभु को अपने हृदय में पकड़ो।

एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध
आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः।
तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत
संसारहेतूपरमश्च यत्र॥ (श्रीभागवत२/२/६)

प्रभु कहीं बाहर से नहीं आयेंगे। हमारे चित्त में तो प्रभु स्वतः सिद्ध हैं, बैठे हुए हैं, चित्त के अधिष्ठाता ही वासुदेव हैं, साक्षात कृष्ण चित्त में विराज रहे हैं। श्रीकृष्ण स्वतः सिद्ध हैं, हमें केवल उनकी ओर देखना है, वे कहीं बाहर से नहीं आयेंगे–जायेंगे। इसलिए व्यर्थ की जो चिन्ता है, उसमें केवल पशुवृत्ति के लोग ही भटका करते हैं। जो भगवान् के भक्त हैं, दास हैं, वे इसमें नहीं भटका करते हैं। कोई–कोई हृदय में भगवान् का ध्यान करते हैं, जिनका मुख प्रसन्न है, सुन्दर कमल के समान जिनके नेत्र हैं। कदम्ब के पुष्प के पराग की

तरह जिनका पीताम्बर (पीला वस्त्र) है, अंगों पर बड़े सुन्दर आभूषण हैं, कानों में कुण्डल हैं, भुजाओं में सोने के बाजूबंद हैं, ऐसे प्रभु के चरणों को अपने हृदयकमल की कर्णिका पर स्थापित करना चाहिए। वे प्रभु गले में कौस्तुभ मणि धारण किये हुए हैं, वनमाला भी विराजित है, चरणों में नूपुर हैं, कंकण–किंकिणी भी अपने अनुरूप अंगों पर शोभायमान हो रहे हैं। नेत्रों की चितवन बड़ी सुन्दर है और भौहों की मरोड़ के बारे में तो कुछ मत पूछो, उसकी शोभा को तो कोई कह ही नहीं सकता, क्यों ? **भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् –** भौहों की मरोड़ का यह मतलब मत समझ लेना कि प्रभु नाराज हो गए हैं। भौहों को वे इस ढंग से मरोड़ते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है मानो कृपा की वर्षा हो रही है। ऐसी उनकी छवि है। भौहों की मरोड़ तो अधिकतर कोप में होती है किन्तु श्रीकृष्ण द्वारा भौहों की मरोड़ कृपा के लिए की जा रही है। ऐसे श्यामसुन्दर के प्रति जब तक मन अपनी धारणा में स्थित न हो जाए तब तक एक–एक अंग का चिंतन करके ध्यान करो। ध्यान की परिपाटी को समझो। भगवान् के सम्पूर्ण विग्रह के इकट्ठा ध्यान करने की परिपाटी नहीं है। महापुरुष लोग ही इसे बताते हैं, अपने–आप ऐसे ही ध्यान नहीं किया जा सकता है। जब श्रीराधारानी–श्यामसुंदर का ध्यान करने बैठो तो पहले कुछ दिनों तक उनके एक ही अंग, श्रीचरणों का ही ध्यान करो। उदाहरण के लिए श्यामसुंदर के चरण का ध्यान करना है तो पहले तो उनके श्रीविग्रह के रंग का ध्यान करो जो नील ज्योति है, उनके दिव्य शरीर में सबसे नीचे चरणों के तलवे में अरुणिमा(लालिमा) है, लाल ज्योति निकल रही है, श्रीनखचन्द्रों पर आओगे तो दोनों चरणों के नखों से दस नख चन्द्रमा चमक रहे हैं, उनकी श्वेत कान्ति है। ऐसे ही श्रीजी के चरण हैं – गौर,अरुण और श्वेत, ये तीन ज्योतियाँ श्रीजी के चरणों से निकलती हैं। इस प्रकार से चरणों का ध्यान करना चाहिए। पहले अंग कान्ति का ध्यान करो जैसे ऊपर बताया गया, इसके बाद कुछ दिनों के अभ्यास के बाद जो कान्ति की त्रिवेणी है (नील–गौर, अरुण और श्वेत), जब इनमें मन कुछ–कुछ रमने लग जाए तब आगे चलकर भगवान् के आभूषणों का ध्यान करो। आभूषणों का वर्णन इसीलिए किया गया है जैसे नूपुर हैं। यह कल्पना नहीं है, भगवान् ने अवतार इसीलिए धारण किया ताकि हम लोगों को उनके स्वरूप का ध्यान करने में सुगमता हो। आभूषण भगवद् विग्रह को प्राप्त करके भगवत्स्वरूप बन जाते हैं। भगवान् के अंगों के आभूषण ऐसे नहीं हैं कि सुनार के द्वारा उनका निर्माण किया गया हो। ठाकुर–श्रीजी के जितने भी आभूषण हैं, वे सब सहचरी रूप हैं, सखियाँ हैं। इसलिए उनके आभूषणों का ध्यान करो। फिर इस क्रम से आगे स्वयं ही समझ लेना चाहिए,ऊपर बढ़ना चाहिए और क्रम–क्रम से एक–एक अंग का ध्यान करते जाना चाहिए।

एकैकशोऽङ्गानि धियानुभावयेत्
पादादि यावद्धसितं गदाभृतः।
जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्
परं परं शुद्ध्यति धीर्यथा यथा॥ (श्रीभागवत२/२/१३)

ध्यान, भगवान् के श्रीचरणों से शुरू करो और मुखकमल तक जाओ कि प्रभु मुस्कुरा रहे हैं, यहाँ तक पहुँच जाओ। यदि कहें कि अब इसके आगे चलो तो आगे चल ही नहीं पाओगे, उनकी मुस्कान के प्रभाव से ही तुम्हारा सब कुछ हर लिया जाएगा।

जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्
परं परं शुद्ध्यति धीर्यथा यथा।।

भगवान् के जो अंगस्थान तुम्हारे चित्त में रम जायें, उसके बाद आगे बढ़ो। सुगमता–सरलतापूर्वक ध्यान करने का यही मार्ग है। सम्पूर्ण श्रीविग्रह का एक स्थान ध्यान नहीं हो सकता है। इसीलिए पहले क्रम से चलो। यह सब शुक मुनि बता रहे हैं और यह अत्यंत सरस वस्तु है। वस्तुतः श्रीमद्भागवतजी रसिकों के मार्ग से भिन्न नहीं है। ये सब समझना चाहिए।

कृष्ण चरणों का ध्यान करने के बाद जब ऊपर चले गए और मन अच्छी तरह रम गया तथा जब शरीर छोड़ने का समय आ जाए तो मन को कहीं और न टिकाये। इन्द्रियों को मन द्वारा नियन्त्रित करे और मन को

अपनी बुद्धि से बाँधे । ये सब एक दूसरे के अधिकारी(officer) हैं। जैसे पुलिस विभाग में एक थानेदार होता है, उसके ऊपर S.P. होता है, S.P. के ऊपर I.G.आदि अन्य वरिष्ठ अधिकारी होते हैं। वैसे ही इन्द्रियों को तो मन रोकता है तथा मन को बुद्धि रोकती है। यह क्रम है। फिर बुद्धि को ले जाओ क्षेत्रज्ञ (जीव) में तथा क्षेत्रज्ञ को ले जाओ अन्तरात्मा में और अन्तरात्मा को ले जाओ परमात्मा श्रीकृष्ण में। इस प्रकार सब कुछ श्यामसुंदर में ले जाकर, सब कुछ उन्हें अर्पण करने के बाद एकदम शांत होकर उस पद को प्राप्त हो जाओगे, जिसे वैष्णव पद कहते हैं, भगवद्धाम कहते हैं।

परं पदं वैष्णवमामनन्ति

अब यहाँ एक मतभेद है, एक समझने योग्य बात है। बहुत से लोग जो अद्वैतवादी हैं, उनको वैष्णव आचार्य मायावादी कहते हैं क्योंकि जितना भी भगवत्क्षेत्र है, उसको वे सतोगुण के अन्तर्गत मानते हैं परन्तु भक्त लोग कहते हैं कि भगवत्क्षेत्र सतोगुण के अन्तर्गत नहीं है, वह तो वस्तुतः गुणातीत वस्तु है, सतोगुण कैसे हो जाएगा ? वह कौन सी वस्तु है, वह विशुद्ध सत्व है, उसे अप्राकृत तत्त्व कहा जाता है जैसे शुकदेव जी ने कह

न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च
न वै विकारो न महान् प्रधानम् ।

(श्रीभागवतजी २/२/१७)

न वहाँ सतोगुण है, न रजोगुण और न ही तमोगुण है। वह वैष्णवपद भगवद्धाम है और मुनि को चाहिए कि उसका आलिंगन करके उपराम हो जाए।

परीक्षितजी ने जो गति पूछी तो शुकदेवजी सभी बातों को बता रहे हैं। मुक्ति दो प्रकार की होती है। एक को कहते हैं सद्योमुक्ति और दूसरी को कहते हैं – क्रम मुक्ति। यह समझने योग्य और कठिन विषय है। सद्योमुक्ति नाम सुनने से ऐसा लगता है कि सद्योमुक्ति बड़ी चीज है और क्रम मुक्ति छोटी चीज है परन्तु बड़े और छोटेपन की बात नहीं है। बहुत से लोग इसे समझ नहीं पाते हैं। सद्यः (सद्योमुक्ति) का तात्पर्य है कि ब्रह्म में हम लीन हो गए। क्रममुक्ति का तात्पर्य यह है कि जीव जब भगवद्धाम में जाता है तो ब्रह्म सब जगह व्यापक है। ब्रह्म कौन है, ज्ञानी लोग किसमें लीन होते हैं ? भगवान् के श्रीचरणारविन्द का जो प्रकाश है, भगवद्धाम का जो प्रकाश है, वही ब्रह्म है। भगवान् ने गीता में भी कहा है– **ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहं –** ब्रह्म की प्रतिष्ठा मैं हूँ, सविशेष केन्द्रस्थानीय मैं हूँ, ब्रह्म तो मेरी महिमा है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥
गीता–१८/५४)

ब्रह्म होने के बाद (योगी) फिर मेरी भक्ति प्राप्त करता है। इसलिए ब्रह्म तो सर्वत्र है ही, साधक उसमें लीन हो जाता है, इसको सद्योमुक्ति कहते हैं। क्रममुक्ति उसको कहते हैं जैसे सूर्य स्थानीय अर्थात् सूर्य और उसका प्रकाश है। सूर्य का प्रकाश हमें पृथ्वी पर भी मिल रहा है परन्तु सूर्य जो प्रकाश का केन्द्रबिन्दु है, उसके पास पहुँचने के लिए हमें बहुत क्रम से चलना होगा और तब हम सूर्य के पास पहुँचेंगे। सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति का यह भाव है। पहले सद्योमुक्ति को समझना चाहिए कि यह क्या है ?

स्वपार्ष्णिनाऽऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं
स्थानेषु षट्सून्नमयेज्झितक्लमः ।

(श्रीभागवतजी २/२/१९)

इस शरीर में छः चक्र हैं। मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्णा में ये छः चक्र हैं –(१) मूलाधार (२) स्वधिष्ठान (३) मणिपूरक (४) अनाहत (५) विशुद्ध तथा (६) आज्ञा चक्र। मूलाधार चक्र गुदा द्वार के ऊपर है, लिंग मूल में है अधिष्ठान चक्र, नाभि में है मणिपूरक चक्र, हृदय में है अनाहत चक्र, कंठ में है विशुद्ध चक्र तथा भौहों के मध्य में है आज्ञा चक्र। इस प्रकार ये छः चक्र हैं।

सृष्टि क्रम का स्वरूप

बाबाश्री की श्रीभागवत–सप्ताह कथा से संकलित

शुकमुनि कहते हैं कि जो जीव सद्योमुक्ति की ओर जाता है, उसे चाहिए कि एड़ी से अपनी गुदा को दबाकर प्राणवायु को ऊपर ले जाए। पहले प्राणवायु को (समस्त प्राणों को) मूलाधार चक्र से उठाकर फिर धीरे–धीरे छः चक्रों से ऊपर उठाता चला जाए, **षट्सून्नमयेज्जितक्लमः** – क्लम यानी परिश्रम को छोड़कर अथवा जीतकर। प्राणवायु को मूलाधार चक्र से उठाते–उठाते फिर स्वधिष्ठान चक्र से भी उठाये और मणिपूरक पर ले जाए, फिर वहाँ से उठाये तो हृदय में अनाहत चक्र मिलेगा, फिर वहाँ से प्राणवायु को उठाकर, उदानगत्यो – उदान गति से, उरसि – उरसि से यहाँ तात्पर्य है विशुद्धि चक्र क्योंकि हृदय का वर्णन तो हो चुका है, हृदय से तात्पर्य है अनाहत चक्र किन्तु यहाँ उरसि का मतलब है कंठ (गले)के बीच में प्राणवायु को ले जाएँ और वहाँ से – **ततोऽनुसन्धाय –** अपने चित्त को अनुसन्धान करके, अपने लक्ष्य पर बुद्धि के द्वारा अपने तालुमूल में, विशुद्धि चक्र के अग्रभाग में, धीरे–धीरे प्राणों को उठा के ले जाए।

तस्माद् भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत
निरुद्धसप्तायतनोऽनपेक्षः (श्रीभागवतजी २/२/२१)

उसके बाद सातों द्वारों की अपेक्षा न करके भौहों के बीच आज्ञा चक्र में ले जाए और एक मुहूर्त के अर्द्ध तक रुककर, अकुण्ठ दृष्टि रखकर ब्रह्माण्ड को फोड़ कर मुक्त हो जाए, यह है सद्योमुक्ति। अब क्रममुक्ति को समझना चाहिए, यह कठिन है किन्तु वैष्णवों (भक्तों) के लिए यही है। मृत्युलोक से जब भगवद् भक्त भगवद् धाम को, गोलोक धाम को जाता है तो वह क्रम से जाता है। जैसे कोई बरसाना से मथुरा जाएगा तो पहले गोवर्धन पड़ेगा, फिर अड़ींग और फिर अन्य स्थान होकर मथुरा तक पहुँचेगा। इसी प्रकार जितने भी जीव परलोक की यात्रा करते हैं, उनमें बहुत से लोग ब्रह्मलोक तक जाते हैं। यह बड़े चक्कर की बात है कि ब्रह्मलोक तक भक्त भी जाता है और बहुत से लोग जो चौरासी लाख योनियों में लौटने वाले हैं, वे भी ब्रह्मलोक जाते हैं। यह दोनों ही प्रकार के शास्त्र के वचन हैं। भगवान् ने गीता में कहा–

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

(गीता–८/१६)

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक तक जाकर चौरासी लाख योनियों में लौटना पड़ेगा। जहाँ जाकर लौटना नहीं पड़ता, वह तो मेरा धाम है। **यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। (गीता–१५/६)** इसलिए ब्रह्मलोक तक जाकर मृत्युलोक में लौटना पड़ेगा।

इधर भागवत में शुकदेव जी कह रहे हैं कि भक्त को ब्रह्मलोक जाना पड़ता है अथवा **ब्रह्मणा सहते प्राप्ताः** – ब्रह्मा जी के साथ वे मुक्त हो जाते हैं, ऐसे भी शास्त्र के वचन हैं। ये जो बहुत से विरोधी वचन हैं, इनका समाहार क्या है ? इनका समाहार समझिये।

यहाँ भागवत में संक्षेप में बताया गया है क्योंकि परीक्षित जी के पास समय कम था। इसलिए थोड़े में भागवत में बताया गया कि जब कोई यहाँ (पृथ्वी) से ऊपर के लोकों में जाता है तो उसका एक क्रम है – दिनाभिमानी, पक्षाभिमानी, मासाभिमानी, संवत्सराभिमानी, ऐसे बीच में पड़ने वाले बहुत से स्टेशन बताये गए हैं परन्तु भगवत्शक्ति से उसमें समय नहीं लगता है। केवल उनका नाम ही बताया गया है। ब्रह्मलोक कई प्रकार के लोग जाते हैं, ये भी समझना चाहिए। एक तो वे लोग जाते हैं, जिनको ब्रह्मलोक जाकर लौटना पड़ता है। एक वे हैं, जो ब्रह्मलोक में रुक जाते हैं जैसे कोई बड़ा भारी जंक्शन है, एक गाड़ी तो जंक्शन से लौट आती है, एक गाड़ी जंक्शन पर ही समाप्त हो जाती है, उसको केवल वहीं तक जाना होता है, एक गाड़ी जंक्शन से आगे चली जाती है। इस प्रकार जंक्शन में तीन प्रकार की गाड़ियाँ चलती हैं। वैसे ही ब्रह्मलोक में तीन प्रकार के यात्री जाते हैं। **यदि**

प्रयास्यन् नृप पारमेष्ठ्यं
वैहायसानामुत यद् विहारम्।

अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये
सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥

(श्रीभागवत-२/२/२२)

यदि कोई ब्रह्मलोक के भोगों के लिए जा रहा है अथवा आकाशचारी लोगों के साथ कोई विहार करने जा रहा है तो वह अपने मन को साथ लेकर जाए और ये ऊपर की गतियाँ कर्मों से नहीं मिलती हैं। विद्या, तप और योग के कारण मिलती हैं, कैसे ? योगी पहले यहाँ से अग्निलोक जाता है। ये सभी जाने वाले योगी आकाशमार्ग से जाते हैं। ये कैसे जाते हैं तो इसका उत्तर यह है कि सुषुम्णा नाड़ी ऐसी है, जो यहाँ से लेकर ब्रह्मलोक तक फैली हुई है, यह हमको दिखाई नहीं दे सकती है क्योंकि बहुत ही सूक्ष्म संसार है। ऐसा मत समझो कि सुषुम्णा नाड़ी केवल हमारे शरीर के ही भीतर है। यह ऊपर तक चली गयी है। **सुषुम्णया ब्रह्मपथेन शोचिषा** – योगी ब्रह्मपथ से चला, अग्निलोक को गया। अग्निलोक क्यों गया तो शुकदेव जी बोले-**विद्यूतकल्कोऽथ** – जो कुछ उसके अन्तःकरण में रज-तम के मल रह जाते हैं , वे वहाँ जल जाते हैं। अग्निलोक से चलकर योगी शैशुमार चक्र जाता है। शैशुमार चक्र क्या है, यह विश्व ब्रह्माण्ड की नाभि है। जैसे हमारे शरीर में नाभि है, उसी प्रकार शैशुमार चक्र भी नाभि है। **अणीयसा** – बड़े सूक्ष्म शरीर से, **विरजेन** – बड़े निर्मल होकर (क्योंकि अग्निलोक में योगी के समस्त मल जल चुके हैं) योगी महर्लोक में जाता है, जहाँ एक कल्प तक लोग रहते हैं जैसे पृथ्वी से अन्तरिक्ष में चले जाओ तो वहाँ से पृथ्वी दिखाई पड़ेगी, वैसे ही महर्लोक में जो चला जाता है उसे नीचे का संसार दिखाई पड़ता है। जब प्रलय का समय आता है और शेषनाग के मुख से निकली हुई आग के द्वारा सारा संसार जलने लगता है तो ऊपर के लोक में बैठकर वहाँ के निवासी इसे देखते हैं। जब संसार जलने लगता है तो योगी ब्रह्मलोक में चला जाता है। ब्रह्मलोक की आयु ब्रह्मा की आयु के समान ही दो परार्द्ध की है, वहाँ किसी प्रकार का कोई शोक नहीं है, बुढ़ापा नहीं है, मृत्यु नहीं है, उद्वेग नहीं है। ब्रह्मलोक में तीन प्रकार के लोग गए थे, एक तो पुण्य के बल से जाने वाले, जिन्होंने १०० वर्षों तक कोई पाप नहीं किया और बहुत अधिक पुण्य किये। दूसरे वे लोग ब्रह्मलोक जाते हैं जो हिरण्यगर्भ ब्रह्मा जी के उपासक हैं, जो ब्रह्माजी को परमात्मा मानकर उनका भजन करते हैं। तीसरी कोटि में, भगवद् भक्तगण भी ब्रह्मलोक जाते हैं क्योंकि भगवद्धाम जाते समय ब्रह्मलोक रास्ते में ही पड़ता है। जो लोग पुण्य के बल से ब्रह्मलोक जाते हैं, वे तो वहाँ रूककर, वहाँ के भोगों को भोग कर ब्रह्मलोक के अधिकारी बन जाते हैं। कोई-कोई ब्रह्मा भी बन जाते हैं। दूसरे प्रकार के लोग जो हिरण्यगर्भ के उपासक हैं, जिन्होंने ब्रह्मा जी को परमात्मा मानकर उनका भजन किया, ऐसे लोग तो ब्रह्मलोक में जब तक ब्रह्मा जी हैं,तब तक वहाँ रहेंगे, इसके बाद वे लोग ब्रह्मा जी के साथ ही मुक्त हो जायेंगे, ब्रह्मा जी के पहले वे मुक्त नहीं होंगे। इसीलिए इसे क्रममुक्ति कहा जाता है क्योंकि जो लोग मूल ब्रह्मा जी के उपासक हैं, वे ब्रह्मा जी के साथ ही मुक्त होंगे किन्तु यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि जो भगवद्भक्त होता है, उसकी मुक्ति में देर नहीं लगती जैसे कोई महत्वपूर्ण रेलगाड़ी चलती है तो वह छोटे-मोटे स्टेशनों पर नहीं रुकती है, रास्ते में स्टेशन पड़ गया, यह दूसरी बात है लेकिन गाड़ी सीधी चली जाती है, बीच में कहीं रुकती नहीं है, वैसे ही जो भगवद्भक्त है, वह तो उत्तम कोटि की रेलगाड़ी है, उसके लिए तो ब्रह्मलोक बीच में पड़ गया, ठीक है लेकिन वहाँ ब्रह्मलोक का केबिन मास्टर ब्रह्माजी भक्त को हरी झंडी दिखा देगा कि तुम तो चले जाओ, तुमको रोकने वाला कोई नहीं है, यहाँ तुम्हारे रुकने का स्थान नहीं है, यहाँ तो छोटा सा स्टेशन है, तुम्हारी तो सुपरफास्ट गाड़ी है, तुम भगवद्धाम जा रहे हो, यहाँ तुम्हारा क्या काम ? इसलिए ब्रह्मा जी भक्त को सीधे हरी झंडी दिखा देते हैं और भक्त स्वेच्छा से ही भगवद्धाम को चला जाता है, ब्रह्मलोक में रुकता नहीं है। क्रम मुक्ति का मतलब यह नहीं है कि साधक को कुछ देर लगी, ऐसा नहीं समझना चाहिए। शुक मुनि कहते हैं कि इसे क्रममुक्ति इसलिए कहा गया क्योंकि बहुत से अधिकारी जो ब्रह्मलोक में रुकने वाले होते हैं, कुछ वहाँ से लौटने वाले होते हैं, उन सबकी दृष्टि से इसे क्रममुक्ति कहा जाता है। भक्त यदि ब्रह्मलोक पहुँच जाता है तो स्वेच्छा से ब्रह्माण्ड का भेदन कर देता है, कैसे ? सद्योमुक्ति वाला भी तो ब्रह्माण्ड का भेदन करता है, अपनी प्राणवायु को ले जाकर षट्चक्रों से खींचते-खींचते और षट्चक्रों के बाद ब्रह्माण्ड का भेदन कर मुक्त होता है।

जबकि भगवद्भक्त तो बहुत बड़ा अधिकारी (authority) है। सद्योमुक्ति वाले महाराज तो व्यष्टि ब्रह्माण्ड का भेदन करते हैं और भक्त तो समष्टि ब्रह्माण्ड का भेदनकर भगवद्धाम को जाता है। समस्त प्राकृत रचना के ऊपर है अप्राकृत भगवद्धाम। जितना भी स्थूल ब्रह्माण्ड है, उन सबका भेदन करके भक्त भगवद्धाम को जाता है। कैसे भेदन करता है ? दो प्रकार के आवरण होते हैं। एक स्थूल आवरण और दूसरा सूक्ष्म आवरण। पचास करोड़ योजन का जो ब्रह्माण्ड है, यह स्थूल आवरण है, इसमें पार्थिव अंश विशेष है। पार्थिव आवरण का भेदन करने पर उससे १० गुना जल का आवरण है अर्थात् दस–दस गुना आवरण बढ़ते जाते हैं। पार्थिव आवरण से दस गुना जल का आवरण है, जल से दस गुना तेज का आवरण है, उससे भी दस गुना आकाश का आवरण है। आकाश से दस गुना अहंकार का आवरण है, अहंकार से दस गुना महत्तत्व का आवरण है, महत्तत्व से दस गुना प्रकृति का आवरण है। इस प्रकार से इन आवरणों का भेदन करके तब सूक्ष्म आवरणों का भेदन करे, कैसे ?

घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं

घ्राण के द्वारा गंध तन्मात्रा, रसना के द्वारा रस तन्मात्रा, इस प्रकार इन सभी तन्मात्राओं के आवरणों का भेदन करके जो ऊपर को जा रहा है, उसे चाहिए कि तामस अहं, सूक्ष्म भूतों का भेदन करे फिर इन्द्रियाँ जहाँ से निकली हैं, उस राजस अहं का भेदन करे फिर वैकारिक सात्विक अहंकार का भेदन करे, इसके बाद महत्तत्व का भेदन करे और अंत में भक्त प्रकृति का भेदन करने के बाद भगवद्धाम में पहुँच जाता है, जहाँ से फिर कभी संसार में नहीं लौटता और अनन्तकाल के लिए भगवान् के साथ रास विहार इत्यादि भगवल्लीलाओं में प्रवेश कर जाता है। अब उसके लिए लौटने का कोई काम नहीं है। शुकदेव जी परीक्षित से कहते हैं कि ये जो मार्ग मैंने तुम्हे बताये, इनके अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग नहीं है और इस मार्ग को पाने के लिए – **वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्** अर्थात् भक्तियोग चाहिए। इसके अतिरिक्त एक और अजीब बात शुकदेव जी कह गए –

दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः –

(श्रीभागवतजी २/२/३५)

प्रश्न यह हुआ कि भगवान् से प्रेम कैसे करें क्योंकि भगवान् दिखाई तो देते नहीं हैं। लोग प्रेम उससे करते हैं जो दिखाई देता है और जो दिखाई ही नहीं दे रहा है, उससे कैसे प्यार किया जाए ? इसके लिए शुकदेव जी कहते हैं कि जैसे कहीं पर धुआँ निकल रहा है तो उसे देखकर हम अनुमान लगाते हैं कि वहाँ पर आग होगी, वैसे ही संसार के जितने भी दृश्य हैं, इनको देखकर के सोचना चाहिए कि जो इनका द्रष्टा है, वह परमात्मा है। इसके लिए थोड़ा विचार की आवश्यकता है। संसार में जितना रस है, जितना आनन्द है, वह सब कहाँ से आया है, दृश्य को प्रकाशित कौन कर रहा है ? इस प्रकार विचार करते–करते स्वतः पता पड़ जाता है कि आनन्द कहाँ से आया है, जो नन्द को आनन्द श्रीकृष्ण है, वहाँ से आनन्द आ रहा है। जैसे कमरे में बिजली का बल्ब है, इसमें बिजली कहाँ से आई है, विचार करते चले जाओ तो पता पड़ेगा कि बिजली का तार पड़ा फिर पावर हाउस, इसके बाद कहीं बिजली बनती है, वहाँ से आती है तो बिजली का मूल केंद्र वह हुआ, जहाँ बिजली बनायी जाती है। इसी प्रकार शुकदेव जी कह रहे हैं कि यह सोचो संसार में आनन्द कहाँ से आया, इस संसार में रस कहाँ से आया ? यदि तुम विचार करोगे तो समझ जाओगे कि सम्पूर्ण आनन्द, सम्पूर्ण रस यदि संसार में कहीं है भी तो उस आनन्द का संकलित रूप, इकट्ठा घर जो है, वही तो कृष्ण है। रस का समुच्चय भण्डार कृष्ण है। इसलिए थोड़ा सा विचार करने पर पता पड़ता है कि सबका दृष्टा कृष्ण है, सबका केन्द्रबिंदु कृष्ण है। ऐसा विचार करने पर स्वतः ही उनसे प्रीति हो जायेगी।

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥

(श्रीभागवतजी २/२/३६)

वे हरि सर्वत्र हैं, सर्वस्थानीय हैं, उन भगवान् का दिन–रात श्रवण करो, उन्हीं का कीर्तन करो, उन्हीं का स्मरण करो, यही कल्याण का एकमात्र मार्ग है और कुछ नहीं है।

वृन्दावन के वृक्ष को, मरम न जाने कोय। डाल–डाल फल पाँत सों, राधे–राधे होय ॥

'मानमन्दिर'के नवनिर्माण कार्य'
का 'शिलान्यास' करते हुए
पूज्यश्री बाबा महाराज

श्री सीताराम विवाह महोत्सव – दिनांक ११ मार्च २०२३ से १७ मार्च २०२३ तक

स्थान – श्रीमाताजी गौशाला, बरसाना

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ़्सेट प्रिंटर्स A- 125/1 , wazipur industriyal area, new delhi- 52 **से मुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संसथान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.) से प्रकाशित [AGRA/WPP-12/2021-2023 AT 22.12.23]**